बाल निर्माण की कहानियाँ

१०





बाल-निर्माण की कहानियाँ

भाग १०

*

लेखिका

डॉ. आशा 'सरसिज'

*

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : ११.०० रुपये

विषय-सूची

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

समाज का गौरव

ज्ञानचंद और गुरदीप दोनों मित्र थे, वे अंबाला में रहते थे। दोनों सातवीं कक्षा के छात्र थे। वे पढ़ने में तो होशियार थे, साथ ही साथ अच्छे स्काउट भी थे। दोनों ही अपने दल के नायक थे। उनके स्काउट-मास्टर बड़े योग्य और साहसी व्यक्ति थे। वे बच्चों को खेल-खेल में ही बहुत-सी बातें सिखा देते। उन्होंने स्काउटों में सेवा, परोपकार और साहस की भावनाएँ कूट-कूटकर भर दी थीं, बच्चे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। अपने शिक्षक से सुयोग शिक्षक उन्हें ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उनके चरित्र का निर्माण करता है, उन्हें सद्गुणी बनाता है।

एक दिन ज्ञान और गुरदीप स्कूल से लौट रहे थे, उनका घर बस्ती से बाहर बनी नई कालोनी में था। वहाँ चहल-पहल वैसे भी कम रहती थी। उस दिन लू भी चल रही थी। सड़क प्रायः सुनसान-सी थी। ज्ञानचंद और गुरदीप दोनों बातें करते हुए जा रहे थे। एक दिन बाद ही उनका स्काउटिंग का कैंप लगने वाला था। वे उसी के लगने की बातें कर रहे थे।

बच्चों की आदत होती है कि सड़क पर बात करते हुए चलते हैं तो बातों में डूबकर सब कुछ ही भूल जाते हैं। अधिकांश दुर्घटनाएँ इसी प्रकार होती हैं। कोई स्कूटर की चपेट में आ जाता है तो कोई ट्रक की। कोई किसी से टकरा जाता है तो कोई ठोकर खाकर गिर जाता है, परंतु ज्ञान और गुरदीप की ऐसी आदत न थी। वे तो स्काउट थे, हर समय 'सावधान' रहने वाले।

ज्ञानचंद को थोड़ी देर से लग रहा था कि कोई उनका पीछा कर रहा है। अतएव बातें करते हुए भी वह चौकन्नी निगाह रख रहा था। उसकी आशंका गलत न निकली। सहसा ही एक व्यक्ति ने पास आकर पीछे से गुरदीप के मुँह पर कपड़ा डाला और उसे घसीटकर

ले जाना चाहा। ज्ञानचंद सहसा पीछे मुड़ा। वैसी भयंकर स्थिति देखकर वह तनिक भी नहीं घबराया। उसने सूझबूझ से काम लिया, उस व्यक्ति को धक्का देकर वह भागता ही चला गया। वह पूरी शक्ति से चिल्लाता जा रहा था—'बचाओ-बचाओ।'

भागते हुए भी ज्ञान की निगाह उस व्यक्ति पर थी। उसने देखा कि उस आदमी ने अब गुरदीप के चेहरे पर डाला हुआ कपड़ा कस लिया है। उसे बोरे में डालकर, पीठ पर लादकर वह दूसरी दिशा में भागने लगा। यह देखकर ज्ञान ने भी अपनी दिशा बदल दी। अब वह लुटेरे के पीछे चिल्लाता हुआ भागा।

ज्ञान की चीख आसपास के घरों में बैठे व्यक्तियों ने सुनी। वे अपने घरों से बाहर निकल आए। दूर सड़क पर एक-दो राहगीर जा रहे थे वे भी ठिठक कर खड़े हो गए। ज्ञान उँगली से इशारा करते हुए लगातार भाग रहा था, चीख रहा था—'लुटेरा-बचाओ।' दूसरे व्यक्ति भी ज्ञान के पीछे-पीछे भागे। ज्ञान ने तेजी से जाकर उस व्यक्ति की कमीज पीछे से पकड़ ली, तब तक अन्य व्यक्ति भी वहाँ पहुँच चुके थे। सभी ने उसे घेर लिया।

गुरदीप ने लुटेरे की पकड़ से छूटने के लिए बहुतेरे प्रयास किए, पर उस लम्बे-चौड़े आदमी ने उसे दबोच लिया था। चेहरे पर मोटा कपड़ा पड़ा होने के कारण गुरदीप को सामने का कुछ दिखलाई न दे रहा था। दुष्ट व्यक्ति ने इसका लाभ उठाकर गुरदीप की गर्दन में फंदा कसकर उसे बोरे में डाल दिया था। फंदा कस जाने के कारण वह बेहोश हो गया था।

ज्ञान जल्दी से बोरे की ओर बढ़ा और उसका मुँह खोला। उसने कुछ व्यक्तियों की सहायता लेकर बेहोश गुरदीप को बोरे से बाहर निकाला।

'मेरा घर पास ही है, चलो वहाँ ले चलें।' कहकर एक व्यक्ति ने गुरदीप को अपने कंधे पर लटकाया और चल पड़ा। अब ज्ञानचंद भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। साथी को छुड़ाने और लुटेरे को पकड़वाने का काम पूरा हो चुका था। जिन व्यक्तियों ने उस बच्चों को

चुराने वाले चोर को पकड़ा था वे अब उसकी अच्छी तरह धुनाई कर रहे थे।

ज्ञान और उस व्यक्ति ने घर आकर गुरदीप को लिटा दिया। उसके मुँह पर पानी डाला और उसे बनावटी साँस दी। जल्दी ही उसे होश आ गया। 'कहाँ हूँ मैं ? क्या हुआ मुझे ? कहाँ गया वह आदमी ?' कहते हुए आँखें मलकर गुरदीप उठ बैठा।

'घबराओ नहीं, तुम बिलकुल सुरक्षित हो बेटे।' गृहस्वामी ने गुरदीप के सिर पर हाथ फिराते हुए कहा। ज्ञानचंद ने उस लुटेरे के पकड़े जाने की वह पूरी घटना बताई। 'ओह' ! तो आज तुमने साहसपूर्वक स्वयं को खतरे में डालकर मेरी रक्षा की है।' गुरदीप कहने लगा।

'वह तो मेरा कर्त्तव्य था, मुझे करना ही चाहिए था। भगवान मेरी यह भावना और शक्ति बनाए रखें।' ज्ञान बोला।

गृहस्वामी उन दोनों बच्चों की बातचीत से मन ही मन बड़े प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने नाश्ता-पानी कराया और उनके घर छोड़ आए।

उधर उस लुटेरे को पकड़कर व्यक्ति थाने ले गए। थानेदार ने बताया कि यह एक कुख्यात अपराधी है। बच्चों को चुराना और बेचना ही प्रायः उसका काम है। पुलिस को भी उसकी काफी तलाश थी। सिपाहियों ने उसकी बहुत पिटाई की और धक्का देकर कोठरी में बंद कर दिया।

'आपने कहाँ से पकड़ा इसे ? थानेदार ने साथ आए व्यक्तियों से पूछा और सारी बात जाननी चाही। जब उन्हें पता लगा कि एक छोटे बच्चे की बहादुरी से वह अपराधी पकड़ा गया है, तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उस बच्चे से मिलने वे उसके घर पहुँचे। उन्होंने ज्ञानचंद की पीठ थपथपाई, उसे बहुत शाबासी दी और कहा—'बेटे ! तुम्हारे जैसे साहसी बालक ही समाज का गौरव हैं। सदा ऐसे ही बहादुरी के काम करो।

कुछ दिनों बाद एक सार्वजनिक समारोह में नगर के मुख्य पुलिस अधीक्षक ने ज्ञानचंद को वीरता पुरस्कार दिया और उसका अभिनंदन किया। यही नहीं, वीरता के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार पाने वाले बच्चों के नामों के लिए ज्ञानचंद का नाम प्रस्तावित किया गया। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने ज्ञानचंद को पुरस्कार देकर सम्मानित किया। प्रधानमंत्री से पुरस्कार लेते समय ज्ञानचंद बड़ा पुलकित था। वह मन ही मन संकल्प कर रहा था—'मैं सदैव बुराई, अनीति और अत्याचार से संघर्ष करूँगा। समाज और राष्ट्र के निर्माण के लिए मेरा जीवन अर्पित है।'



पेड़ और शिला

शरद ऋतु थी। सुहावना मौसम था, रात में शीतल वायु बहती। हरसिंगार के ढेरों फूल झर-झर जाते। हरसिंगार के उस पेड़ के नीचे ही पत्थर की एक बड़ी शिला थी। अधिकांश फूल उसी पर गिरते। पत्थर की शिला को बड़ा गुस्सा आता। उसने कई दिन उस पेड़ को चेतावनी दी—'देखो ! अपने फूलों को मुझ पर न गिराया करो। अच्छी बात न होगी।'

पर इसके उपरांत भी प्रतिदिन यही घटना घटती। अब पत्थर की शिला गुस्से से भर उठी। 'ठीक है ! इस अपमान का बदला तो लेकर ही रहूँगी।' उसने अपने आप से कहा।

और दूसरे ही दिन से शिला ने फूलों को कुचलना प्रारंभ कर दिया। नन्हे-नन्हे फूल झरते। शिला निर्ममता से उन फूलों को कुचल देती।

फूलों का झड़ना तब भी बंद न हुआ। शिला सोच रही थी कि फूलों को यों कुचले जाते देखकर पेड़ उससे माफी माँगेगा। उसके ऊपर फूल गिरना बिलकुल बंद हो जाएगा, पर फूल तो ज्यों के त्यों गिरते रहे। उलटे शिला ही फूलों को कुचलते-कुचलते थक गई।

आखिर उससे रहा न गया। उसने पेड़ से पूछ ही लिया—'क्यों ? तुम देखते नहीं कि मैं तुम्हारे फूलों को हमेशा कुचल डालती हूँ, पर तुम फिर भी ढेरों फूल मुझ पर डालते ही रहते हो। क्या फूलों के यों नष्ट होने से तुम्हें पीड़ा नहीं होती ?'

पेड़ हँसा और बोला—'दीदी ! मैं सोच लेता हूँ कि तुम मेरा उपकार कर रही हो। तुम फूलों को कुचल कर उनकी सुगंध और दूर-दूर तक फैला देती हो।'

पेड़ की इस महानता के सामने शिला नतमस्तक हो गई। वह उसके सामने अपने आप को बहुत छोटा अनुभव करने लगी। वह पश्चाताप से भर उठी। सोचने लगी—'ओह ! बुरा करने वालों के लिए भी इसके मन में कोई दुर्भाव नहीं है। सामान्य रूप से तो जरा-सा बुरा करने वाले को हम अपना शत्रु ही मान लेते हैं, कैसा उदार दृष्टिकोण है इसका। वह पेड़ से बोली—'भैया ! मुझे माफ करना। मैं तुम्हारे जैसी महान् नहीं हूँ। मैं तो बड़ी अधम हूँ। मैंने तो बड़ी ही गुस्से में भरकर तुम्हारे उन फूलों को कुचला और मसला था।

पेड़ उसकी बात सुनकर कुछ पल चुप रहा। फिर वह दूर क्षितिज की ओर देखते हुए मानो अपने आप से ही कह रहा हो, ऐसे धीमे स्वर में बोला—'हर बात के दो पहलू होते हैं—अच्छा और बुरा। यदि हमारा स्वभाव बुराई खोजने का ही बन जाता है तो हमारा जीवन कुढ़न, खीज, असंतोष से भर उठता है। न हम किसी पर विश्वास कर पाते हैं और न कोई हम पर।'

'यह तो बिलकुल ठीक कहते हो तुम।' शिला बोली।

पेड़ आगे कहने लगा—'और जब हम बुराई में भी भला पक्ष खोज लेते हैं तो यह आवश्यक नहीं है कि बुरा करने वाले का हम उस समय ही प्रतिकार कर पाएँ।' पर इतना तो कर सकते हैं कि उसका बुरा पक्ष बार-बार देखकर अपने विचारों को उत्तेजना और घृणा से दूषित न बनाए, अपनी शक्तियों को व्यर्थ न करें।

शिला कहने लगी—'तुम जैसा कोई महान् ही ऐसा कर सकता है।'

वृक्ष फिर हँसा और बोला—'बहिन ! जन्म से न कोई महान् होता है, न कोई तुच्छ। हम जैसा सोचते हैं जैसा करते हैं वैसे ही बन जाते हैं। बड़ों की महानता के पीछे विचारों की उच्चता, आचरण की पवित्रता ही होती है। असंभव कुछ भी नहीं है, प्रयास करने से हर कोई वैसा ही बन सकता है।'

वृक्ष की बातों से पत्थर की वह शिला बड़ी प्रभावित हुई। कहने लगी—'भाई ! तुम तो बड़े ज्ञानी हो, परोपकारी हो। आज तुमने मुझे जीवन जीने की सही दिशा दिखलाई है। मैं भी इसके अनुसार चलने का पूरा-पूरा प्रयास करूँगी। अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाऊँगी।'



सूझ-बूझ

वृंदावन के उस जंगल में कदंब के अनेक पेड़ थे। पेड़ों के पास ही एक बहुत बड़ा कुंड था, जिसका नाम था पोतरा कुंड। उसका पानी कम हो गया था, साथ ही गंदा भी हो चला था। इसलिए वहाँ पर मनुष्य स्नान करने नहीं आते थे। अब वहाँ पर मेंढकों का ही साम्राज्य हो गया था। असंख्य मेंढक अपने-अपने परिवारों के साथ वहाँ रहते। जगह की तो कोई कमी वहाँ थी नहीं। मेंढकों के बच्चे मजे में खाते, कूदते, खेलते, घूमते। खाने के लिए भी आस-पास खूब मिल ही जाता था। किसी भी मेंढक को कोई किसी तरह की परेशानी न थी।

उन मेंढकों का मुखिया था दुल्लू। यों नाम तो उसका दुलारे था, पर बड़े सभी प्यार से 'दुल्लू काका' कहते थे। दुल्लू काका बड़े ही समझदार थे। वे उनमें से न थे जो दूसरों पर अपने पद का रौब जमाते हैं और उन्हें अनुचित रूप से तंग करते हैं। वे तो सच्चे जन-सेवक थे, वे हर किसी की सहायता के लिए तैयार रहते। यही कारण था कि सारे मेंढक उन्हें जी-जान से प्यार करते थे।

मेंढकों का वह विशाल समूह पोतराकुंड में बहुत आराम से रह रहा था, परंतु कुछ वर्षों बाद एक दुर्घटना घटी। एक दिन बसु नाम का सर्प अपने परिवार के साथ घूमता हुआ आया। बसु को वह स्थान बहुत ही सुंदर लगा। वह सपरिवार वहाँ बस गया। इतना ही नहीं उसने अपने मित्रों-संबंधियों को भी वहाँ बसने के लिए निमंत्रण दे दिया।

बसु के वहाँ बसने पर मेंढकों की तो जान पर ही आ बनी। बसु और उसके कुटुंबी आठ-दस मेंढकों का रोज सफाया कर डालते। मेंढकों के छोटे-छोटे बच्चे घूमने-फिरने बाहर निकलते, पर उनका पता ही न लगता। सारे मेंढक चिंता से भर उठे। वे दुल्लू के

पास गए और बोले—'काका ! हम कैसी मुसीबत में फँस गए हैं। अब तो यह स्थान छोड़कर और कहीं जाने में ही भला है। अपने प्यारे बच्चों का विछोह हम कब तक सहते रहेंगे ?'

दुल्लू काका गंभीर होकर बोले—'मैं भी कई दिनों से इस बात पर विचार कर रहा था। यह जगह एकदम छोड़ते भी नहीं बनती। वर्षों मेहनत करके हमने इसे रहने योग्य बनाया है। ऐसा करें, सापों से बातचीत करके देखें। यदि कोई समझौता हो जाए तो ठीक है।'

दूसरे ही दिन दुल्लू काका कुछ मेंढकों को लेकर बसु के पास पहुँचे। दुल्लू काका ने हाथ जोड़कर कहा—'बड़े भाई ! आप यहाँ आए हैं, आपका स्वागत है। यह जगह हमने वर्षों मेहनत करके रहने योग्य बनाई है। फिर भी हम आधी जगह आपको देने को तैयार हैं। आधी जगह आप हमारे लिए छोड़ दीजिए और आधे स्थान में आप रह लीजिए।'

यह सुनकर बसु फुँकारते हुए बोला—'तुम कौन होते हो हमें आधी और पूरी जगह देने वाले। तुम्हारी यह हिम्मत कि हमसे ऐसी बात कहो। अब यहाँ हम और हमारे नाते-रिश्तेदार रहेंगे। तुमने यदि जरा भी अधिक सिर उठाया तो सब के सब मौत के मुँह में जाओगे।

मेंढक अपना-सा मुँह लेकर लौट आए। बसु के कटु व्यवहार से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे सभी निराश होकर पोतरा कुंड छोड़ने की तैयारी करने लगे। दुल्लू काका बोला—'भाइयो ! यदि बसु सज्जनता और शिष्टता से यही कहते तो हमें उतनी बुरी न लगती। यह ठीक है कि शारीरिक बल में वह हमसे अधिक है, पर बलशाली को भी ऐसा उद्दंडता भरा कटु व्यवहार शोभा नहीं देता। बसु को सबक मिलना ही चाहिए, जिससे वह दूसरों को तुच्छ-दुर्बल और असहाय समझकर न सताए। हम अपने बुद्धिबल से उसको परास्त करके ही रहेंगे।'

'कैसे ?' मेंढक एक साथ पूछने लगे। दुल्लू काका ने उन्हें अपनी योजना बताई—'दुल्लू काका का मित्र था अंशू नाम का एक

नेवला। उन्होंने अंशू की आपत्ति में सहायता की थी, उन्हें विश्वास था कि अब मुसीबत के समय अंशू भी सच्चे मित्र की भाँति उनकी सहायता करेगा। दुल्लू काका और दूसरे मेंढक दौड़े-दौड़े उसके पास गए और सारी कथा सुनाई।

अंशू बात सुनते ही बोला—'आप चिंता न कीजिए। मैं जल्दी ही अपने साथियों सहित आ जाऊँगा। तब तक आप थोड़े दिन के लिए और कहीं रहने के लिए चले जाइए। कहीं ऐसा न हो कि बसु गुस्से में आप से बदला लेने लगे।'

'ठीक है, हम ऐसा ही करेंगे।' कहते हुए दुल्लू काका और दूसरे मेंढक वहाँ से लौट आए। दूसरे ही दिन सभी मेंढक अपना-अपना सारा ही सामान साथ लेकर, एक झुंड बनाकर पोतरा कुंड छोड़कर चले गए।

जल्दी ही अंशू अपने मित्रों और संबंधियों के साथ वहाँ आ गया। उसने आते ही सारे इलाके में यह प्रचार करा दिया कि अब नेवलों का पूरा का पूरा राज्य वहाँ बसने वाला है। यद्यपि नेवले संख्या में थोड़े थे, पर वे हर समय यहाँ घूमते रहते थे। यह देखकर बसु डर उठा। उसने वह स्थान छोड़ देने में ही अपनी भलाई समझी। उसके मित्र उसे कोसने लगे—तुमने बिना सोचे-समझे हमें बुला लिया। कम से कम यह तो देख लेते कि यह स्थान सुरक्षित है भी या नहीं, तभी हमारा घर छुड़वाते।' बसु क्या कहता ? उसने तो सबका भला सोचा था, पर हुआ बुरा। वह चुपचाप सिर झुकाकर रह गया। उसे डर था कि और बहुत से नेवले आ जाएँगे तो साँपों के लिए खतरा हो जाएगा। अतएव बसु सारे साँपों के साथ रातों-रात वहाँ से चला गया।

दुल्लू काका और दूसरे मेंढक आसपास ही छिपे हुए थे। बसु के दूर जाते ही वे गाते-बजाते फुदक-फुदक कर वहाँ आ गए। दुल्लू ने अंशू नेवले को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। उसकी सहायता के कारण वह अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु को हरा सके थे। आपत्ति के समय सहायता करके अंशू ने सच्ची मित्रता निवाही थी। दुल्लू

और दूसरे मेंढकों ने ढेर सारे उपहार देकर अशू को आदर सहित विदा किया।

सारे मेढकों ने दुल्लू काका की सूझबूझ की बहुत प्रशंसा की। उन्हीं के कारण वे अपने पुराने घरों में लौट सके थे। दुल्लू काका कहने लगे—'भाइयो ! हमें प्रत्येक से सज्जनता का व्यवहार करना चाहिए, परंतु जब दुष्ट सज्जनता का मूल्य न समझे, दुष्टता करने पर उतारू रहे तो फिर उसके आगे दुर्बल बनना कायरता है। उसे सबक सिखाना चाहिए, जिससे वह अपनी दुष्टता से औरों को कष्ट न पहुँचा सके। अपने से अधिक शक्तिशाली पर भी हम सूझबूझ से ही विजय पा सकते हैं। कोई भी स्थिति ऐसी नहीं जिसे बुद्धिमानी से हल न किया जा सकता हो, पर उसके लिए आवश्यकता होती है धैर्य की, आत्म विश्वास की।'

'और तभी सफलता भी मिलती है।' सारे मेंढक एक साथ एक स्वर में बोले।

फिर सभी एक साथ चल पड़े आज के दिन आयोजित विशाल प्रीतिभोज का आनंद लेने।



धूर्त लोमड़ी

गोमती नदी के पार एक छोटा-सा जंगल था। वहाँ पर अनेक जीव-जंतु रहा करते थे। श्यामा बिल्ली, गामा खरगोश, लाली मुर्गी, राजा भालू यह सभी एक-दूसरे के मित्र थे। इनकी अपनी अलग मंडली थी। सभी भेदभाव और दुश्मनी को छोड़कर साथ-साथ रहते और एक-दूसरे का हित चाहते, प्यार करते। यद्यपि यह अपने मूल स्वभाव से एक दूसरे से भिन्न थे, परंतु कभी कोई किसी पर न हमला करता, न अहित चाहता। जंगल के दूसरे प्राणी इनकी मित्रता का उदाहरण देते।

सज्जन ही मिल-जुलकर रहने, प्यार और प्रसन्नता का वातावरण बनाने में जीवन का गौरव समझते हैं, परंतु इसके विपरीत दुर्जन एक-दूसरे में फूट डालते रहते हैं, लड़ाई-झगड़ा कराते और वातावरण को दूषित बनाया करते हैं। तेजी लोमड़ी को भी इन सबकी मित्रता अच्छी न लगी। उसने अपनी सहेलियों के सामने प्रतिज्ञा की कि वह बिल्ली आदि में लड़ाई कराकर ही छोड़ेगी। दुर्जन अपने अहं और स्वार्थ से प्रेरित होकर ऐसे कार्य करते हैं जिससे औरों का बुरा होता है।

तेजी जानती थी कि सामान्यतः श्यामा बिल्ली आदि न तो उससे बात करेंगे, न उसे मित्र बनाएँगे। इसलिए वह सही मौके की तलाश करने लगी। वह अवसर देखती रहती थी कि कब उनकी सहायता करे। दो-चार बार ऐसा करके उसने उन पर विश्वास जमा लिया था। आखिर तेजी लोमड़ी ने उनका मित्र बनने में सफलता पा ही ली।

तेजी प्रायः अपनी प्रशंसा करती, अपने गुणों का वर्णन करती। वह अपनी सत्यनिष्ठा, उदारता, परोपकार आदि की घटनाएँ भी सुनाती। भोले जानवर उस पर विश्वास कर लेते। जल्दी ही श्यामा

बिल्ली, गामा खरगोश आदि तेजी को अपना बहुत ही विश्वासी मित्र समझने लगे। वह अब अपनी गुफा छोड़कर उनके साथ ही रहने आ गई।

सद्व्यवहार की अनिवार्य शर्त है—जैसा सोचा जाए, वैसा ही कहा जाए और वैसा ही किया जाए, पर दुर्जन इससे भिन्न होते हैं। सोचते कुछ और हैं, कहते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं। तेजी भी ठीक ऐसी ही थी। वह मुँह से प्रेमपूर्वक मिल-जुलकर रहने की बात कहती, पर सदैव फूट डालने का अवसर ढूँढ़ती। एकांत पाते ही सभी को एक-दूसरे के विरुद्ध भरती। तेजी लोमड़ी मोटे-ताजे गामा खरगोश को देखती तो उसके मुँह में पानी भर आता। वह छल से उन्हें मारने का मौका देखने लगी।

एक बार श्यामा बिल्ली बीमार पड़ी। तेजी ने खूब ही सेवा करके उसका मन जीत लिया। एक दिन वह दत्ता गेड़े के यहाँ से श्यामा की दवा लेकर लौटी और चुपचाप मुँह लटकाकर एक कौने में बैठ गई। उसे गुमसुम देखकर सभी ने पूछा—'क्या बात है ? ऐसे क्यों बैठी हो ?' तेजी लोमड़ी पहले तो कुछ न-न करती रही फिर बहुत ही पूछने पर ठंडी आह भरकर बोली—'काश ! मैं भी खरगोश होती।'

'क्यों क्या बात है ?' सभी ने उत्सुकता से पूछा।

'दत्ता गेंड़े ने कहा था कि यह दवा खरगोश के खून में दी जाएगी। इसलिए मैं खरगोश होती तो मित्र के लिए अपना खून दे देती।' तेजी कहने लगी।

पास बैठा राजा भालू उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगा—'अरे ! यह कौन-सी बड़ी बात है। हमारा गामा खरगोश भी कहाँ पीछे रहने वाला है। थोड़े से खून की ही तो बात है। वह तो जरूर ही खून दे देगा।'

लोमड़ी तो चाहती भी यही थी। थोड़े से खून के बहाने वह गामा का खून ज्यादा-सा निकाल लेगी। अधिक खून निकल जाएगा

तब उसे तेजी लोमड़ी चुपचाप ही चट कर जाएगी। राजा की तो बात सुनकर वह अंदर ही अंदर खुशी से झूम उठी।

उस दिन गामा खरगोश और लल्ली मुर्गी साथ-साथ जंगल गए थे। रात को वे देर से लौटे। खा-पीकर जब सब सोने लगे तो राजा ने उन्हें सारी बात बताई। गामा खुशी-खुशी बोला—'मेरा सौभाग्य होगा जो मित्र के लिए सारा खून काम में आए। सुबह मैं अपना खून दूँगा।'

सब सो गए, पर लल्ली मुर्गी की आँखों में नींद न थी। उसे लग रहा था कि कुछ दाल में काला है। तेजी की बातों पर उसने मन से कभी विश्वास न किया था। दूसरी मुर्गियों से वह तेजी की बुराई सुन चुकी थी। फिर आज तक दत्ता गेंड़े ने कभी किसी प्राणी के खून में दवा नहीं दी थी। वह तो सदैव जड़ी-बूटी वाली दवा नदी के पानी के साथ देता था। 'मुझे सच्चाई की खोज करनी ही चाहिए।' वह मन ही मन बुदबुदाई। उसने पूरी रात जगते-जगते काटी। सुबह होते ही उसने बाँग लगाई। फिर जल्दी से गामा खरगोश को जगाया। सब को सुनाते हुए वह जोर से बोली—चलो उठो ! आज तो तुम्हें खून देना है। नदी के किनारे नहा-धो आओ, खाओ-पीओ फिर जल्दी से यह काम करो।'

रास्ते में लल्ली ने गामा को सारी बात बताई। वह बोली—'नदी के किनारे आने का तो बहाना भर था। चलो जल्दी से दत्ता गेंड़े के यहाँ चलकर सच्चाई पता करें।'

उनकी बात सुनकर दत्ता गेंड़ा तो आश्चर्य से भर उठा और बोला—'अरे ! मैं भला कभी ऐसा पाप करूँगा ? एक को बचाने के लिए दूसरे को क्यों मारूँगा ?'

'पर दादाजी ! तेजी लोमड़ी तो कल से यही गाती फिर रही है, पूरे जंगल में आपको बदनाम कर रही है। ऐसे तो फिर कभी कोई भी जानवर आपके पास दवा लेने नहीं आवेगा।' लल्ली मुर्गी ने उसे भड़काया।

लल्ली की बात सुनकर दत्ता गुस्से से भर उठा। 'चलो ! मेरे सामने कहलवाओ उससे।' वह जोर से बोला।

तीनों गुफा की ओर चल पड़े। तेजी गुफा के बाहर झाड़ी में खड़ी थी। वह अच्छा-सा बबूल का काँटा ढूँढ़ रही थी जो देखने में छोटा लगे, पर जिससे खूब-सा खून निकल आए। उसने झाड़ियों में एक गड्ढा भी खोद लिया था जिससे खरगोश को मारकर वहाँ गाढ़ दे और मौका मिलने पर चुपचाप खा ले।

तभी तेजी ने लल्ली मुर्गी और गामा खरगोश को आते देखा। उसके मुँह में पानी भर आया और वह अपने होठों को चाटने लगी। वह जल्दी से बाहर निकली, पर तभी उसकी निगाह दत्ता गैंड़े पर गई। वह पल भर में सारी बात समझ गई। 'अब तो मेरी खैर नहीं।' उसने मन ही मन कहा और तेजी से झाड़ियों में भागी चली गई। दत्ता गैंड़ा, गामा खरगोश और लल्ली मुर्गी ने बहुतेरी आवाजें लगाईं, पर भला वह कहाँ सुनने वाली थी। वह यह सब जानती थी कि दत्ता गैंड़ा बहुत ही गुस्से में है और पलभर में ही उसे फाड़-चीरकर रख देगा।

गुफा में जाकर दत्ता ने श्यामा बिल्ली और राजा भालू को खूब फटकारा। वह बोला—'कैसे हो तुम जो दूसरों की बात पर आँख बंद करके विश्वास कर लेते हो। अपनी बुद्धि से तो कुछ सोचा करो। यह तुम्हारा सीधापन नहीं, मूर्खता है। यों तो तुम्हें कभी भी कोई बुद्धू बना जाएगा।'

दोनों को अपनी गलती का अनुभव हो रहा था। उनके सिर लज्जा से झुक गए। 'ओह ! हम अपने अंध-विश्वास के कारण छल गए। जिसे जीवन में परखा नहीं है, उस पर कभी विश्वास न करें।' वे आपस में कहने लगे।' दत्ता गैंड़े से उन्होंने फिर कभी ऐसी गलती न दुहराने के लिए क्षमा माँगी।

कुछ दिनों बाद जंगल के दूसरे जानवरों से उन्हें पता लगा कि तेजी के आगे के दोनों पैर बेकार हो गए हैं। हुआ यह था कि उस दिन अंधाधुंध भागने से उसके पैरों में जहरीले काटे चुभ गए थे।

कुछ काँटे बहुत कोशिश के बाद भी निकल न पाए। कई महीने तक पैर पकते रहे फिर अंदर ही अंदर जहर फैल गया और वे कमजोर पड़ गए। तेजी लोमड़ी की जान तो बच गई, पर वह सदैव के लिए अपंग हो गई। दूसरों का बुरा करने वाला उस समय भूल जाता है कि उसका पाप कभी न कभी उसे ही ले डूबेगा।



मोरों की ईर्ष्या

उस विशाल वन में प्रायः पक्षियों का सम्मेलन होता। उस वन के पास ही नहीं दूर-दूर के पक्षी भी उसमें भाग लेते। बड़ी हँसी-खुशी भरा वातावरण बन जाता। भाँति-भाँति के कार्यक्रम होते। कोई गाता, कोई नाचता, कोई व्याख्यान देता, कोई नाटक करता, कोई खेल दिखाता तो कोई उड़ने की प्रतियोगिता में भाग लेता। यों तो सभी पक्षी बड़े सुंदर कार्यक्रम दिखाते, पर गाने के कार्यक्रम में सदैव कोयल जीतती। नाचने में सदैव मोर विजयी रहते। व्याख्यान में तोता बाजी मार ले जाते। नाटक करने में बगुला भगत पुरस्कार पाते। हर बार प्रायः ऐसा ही होता।

मोरों को प्रायः दो पुरस्कार मिलते—एक नृत्य प्रतियोगिता में और दूसरा सौंदर्य प्रतियोगिता में। पर इतने से उन्हें संतोष न होता। वे देवी सरस्वती के वाहन थे अतएव अपने को विशिष्ट मानते थे। वे चाहते थे कि उन्हें ढेरों पुरस्कार मिलें। हर कार्यक्रम में वे ही विजयी रहें जिससे कि पक्षियों पर उनकी धाक् जम जाए। दूसरे पक्षियों के गुण या सुदंरता देखकर उनका मन ईर्ष्या और असंतोष से भर उठता।

सभी मोरों ने मिलकर सलाह की। फिर मोरों का प्रतिनिधि सरस्वती जी के पास पहुँचा। वह बोला—देवीजी ! आप तो सब कुछ करने में समर्थ हैं। आप हमें कृपा करके कोयल जैसी आवाज दीजिए। कबूतर जैसे पैर दीजिए, नीलकंठ जैसा गला दीजिये। दूसरे पक्षी हमसे बाजी मार ले जाएँ—यह हमारे लिए लज्जा की बात है। आप हमें ऐसा बना दीजिए कि हमसे सभी हारें।

मोरों के प्रतिनिधि की बात सुनकर सरस्वती जी मुस्करा उठीं। वह बोलीं—'बच्चो ! औरों के गुणों को क्यों नहीं याद करते। कोयल सुंदर गाती है तो तुम अच्छा नाचते हो। कबूतर के पैर सुंदर हैं तो

तुम्हारे पर। दूसरों से ईर्ष्या क्यों करते हो ? ईर्ष्या और अभिमान दोनों ही अवगुण ऐसे हैं जो हमारा विनाश करते हैं। इन्हें अपनाकर हम दूसरों से तिरस्कार ही पाते हैं। भगवान ने शरीर बनाया है तो तुम अपना स्वभाव बना सकते हो। शरीर तो जैसा है वैसा ही रहेगा, बदला नहीं जा सकता, पर हाँ, स्वभाव अवश्य बदला जा सकता है। अच्छा स्वभाव बनाओगे, गुणी बनोगे तो तुम्हें सभी का स्नेह और सम्मान मिलेगा। बुरी आदतें अपनाओगे तो कोई तुम्हें नहीं चाहेगा।'

मोरों का प्रतिनिधि चुपचाप गर्दन झुकाकर सरस्वती जी की बात सुनता रहा।

वे फिर बोलीं—गाने का निरंतर अभ्यास करो, तभी तुम अच्छा गा पाओगे। देवताओं के वरदान पर निर्भर मत रहो, स्वयं परिश्रम करो। देवता भी उन्हीं की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं।'

मोर वहाँ से चुपचाप, सिर झुकाकर लौट आया। सरस्वती जी ने जो कुछ था उसने आकर सभी मोरों को बता दिया।

पर मोरों ने आज तक गाने का अभ्यास नहीं किया। परिश्रम से जी चुराने के कारण वे अभी तक गाना नहीं सीख पाए हैं। जो केवल देवताओं का वरदान चाहते हैं, स्वयं कुछ श्रम नहीं करते वह जीवन में कुछ नहीं पा सकते।



षड्यंत्र

शांता नाम की एक बकरी थी। उसका घर घने जंगल में था। वहाँ और भी अनेक जीव-जंतु रहते थे। सभी शांता को प्यार करते थे, वह थी भी बड़ी भली। सदैव पड़ौसियों की सहायता के लिए तैयार रहती, सबसे अच्छा व्यवहार करती थी।

एक बार की बात है। जंगल में जोरों का तूफान आया। सभी अपने-अपने घरों में छिपे बैठे थे। तभी शांता के दरवाजे पर दस्तक हुई शांता ने पहले तो सोचा कि तूफान से खट-खट हो रही होगी। पर देर तक खट-खट होती रही तो वह उठी और दरवाजा खोलने पर उसने पाया कि एक भेड़ भीगी हुई परेशान-सी बाहर खड़ी है। वह कह रही थी—'बहिन ! मैं दूसरे जंगल से आई हूँ, रास्ता भटक गई हूँ। इस तूफान में तुम मुझे शरण दो।'

तभी जोर से बिजली कड़की। एक बार तो दोनों सहम गईं। शांता ने भेड़ का हाथ पकड़कर तेजी से अंदर ले जाते हुए कहा—'बहिन ! इसे अपना ही घर समझो और निस्संकोच यहाँ रहो।'

घर के अंदर आकर भेड़ का मन बड़ा प्रसन्न हुआ। शांता का घर गुफा के अंदर था, वह खूब बड़ा और साफ सुथरा था। पर्याप्त हवा और रोशनी भी अंदर आ रही थी। दरारों से बाहर का दृश्य दिखलायी दे रहा था। यहाँ तूफान से कोई असुरक्षा न थी। शांता ने भेड़ का बहुत स्वागत-सत्कार किया। जल्दी ही दोनों एक-दूसरे से घुल-मिल गईं।

वर्षा लगातार तीन दिन तक चलती रही। शांता ने भेड़ को घर पर न जाने दिया। तीन दिन में भेड़ ने मीठी-मीठी बातें बनाकर शांता का मन जीत लिया। शांता तो भोली थी, छल-कपट जानती न थी। दीना नाम की भेड़ जो भी कह देती थी, उस पर वह विश्वास कर लेती थी।

एक दिन बातों ही बातों में दीना कहने लगी—'बहिन ! घर तो तुम्हारा खूब बड़ा है। तुम यहाँ पर अकेली ही रहती हो। किसी को अपने साथ रख लो न। तुम्हारा मन भी लग जाएगा और दुःख-मुसीबत के लिए साथी भी मिल जाएगा।

'सो तो है ही' कुछ सोचते हुए शांता बोली। फिर वह हँसते हुए कहने लगी—'तुमसे अच्छा साथी मैं कहाँ ढूँढूगी ? तुम ही रह जाओ मेरे साथ।'

'ओह ! तुम रखोगी तो जरूर रहूँगी।' दीना बोली। वह तो शांता से कहलवाना भी यही चाहती थी, इसलिए मन ही मन बड़ी खुश हो रही थी।

हँसी-हँसी में कही गई बात आई-गई हो गई। दीना वहीं रहने लगी। एकाध बार उसने जाने की कोशिश भी की तो शांता ने कहा—'बस ! ऊब गया मन। तुम तो यहीं पर रहने की बात कहती थीं।'

'फिर तुम कभी मुझे निकालोगी तो नहीं ?' दीना ने हँसकर भोलेपन से पूछा।

'जब ऐसा करूँ तो तब कहना।' शांता बोली।

और फिर दीना भेड़ शांता के पास ही रहने लगी। शांता और दीना दोनों साथ-साथ खाना ढूँढ़ने जंगल जातीं और साथ-साथ घूमतीं। शांता को दीना के आने से बहुत अच्छा लगने लगा भी था। सारा समय मिल-जुलकर काम करने एवं हँसी-खुशी में बीत जाता था। घर का सारा काम तो दीना ने ही सँभाल लिया था। वह तो शांता को काम से हाथ भी न लगाने देती। दीना ने उसे पूरी तरह से अपने पर आश्रित बना लिया था। उसकी मीठी बोली से, अच्छे व्यवहार से शांता मुग्ध हो गई थी। दीना के अतिरिक्त मानो अब उसे किसी की जरूरत ही न रह गई थी। जब भी वह रहती दीना के साथ, जहाँ भी जाती तो दीना के साथ। दूसरों से बातें करने की अब उसे फुरसत भी कम मिलती थी।

शांता के पड़ौसियों को यह अच्छा न लगा। एक दिन अवसर देखकर एक अनुभवी वृद्ध भैंसा बोला—'शाता बिटिया ! यह दीना क्या तुम्हारी कोई रिश्तेदार है ?'

'नहीं दादाजी ! यह तो भगवान ने मेरे लिए अच्छी सहेली भेज दी है।' शांता बोली। फिर उसने तूफान से परेशान होकर दीना के आने की सारी घटना भैंसा को बताई। यह सुनकर वह वृद्ध भैंसा कुछ गंभीर हो गया और बोला—'शांता ! विपत्ति में हम दूसरों के काम आएँ, उनकी सहायता करें यह तो समझ में आती है, पर किसी से भी घनिष्ठता बनाने से पहले अच्छी तरह से सोच-विचार लेना चाहिए। जाँच-पड़ताल कर लेनी चाहिए कि वह उसके योग्य है भी या नहीं। कहीं हमारी सज्जनता किसी दुष्टता को तो बढ़ावा नहीं दे रही है। केवल व्यवहार के आधार पर प्रारंभ में ही किसी अपरिचित को सज्जन या दुर्जन कह पाना बड़ा कठिन है, क्योंकि दोनों का व्यवहार एक-सा होता है। यही नहीं, दुर्जन भी सज्जनों से अधिक विनम्र और भी अच्छा व्यवहार करते हैं। वे दिखाते हैं कि मानो वही एकमात्र और सच्चे हितैषी हैं। जब वे देखते हैं कि उनका विश्वास पूरी तरह जम गया है तो अपने वास्तविक रूप में आते हैं और धोखा देते हैं। इसलिए प्रायः कहा भी जाता है कि किसी भी अपरिचित को बिना परखे उस पर अत्यधिक विश्वास न करो।'

'नहीं-नहीं दादाजी ! दीना बहिन ऐसी नहीं है।' शांता तुरंत ही बोली।

'पर किसी को बिना जाने-बूझे यों घर में रख लेना अच्छा नहीं।' वृद्ध भैंसे ने चलते-चलते कहा।

उसके जाने के बाद शांता बुदबुदाई—'ओह ! बूढ़े बड़े ही शंकालु होते हैं।'

शांता के दूसरे पड़ौसियों ने भी घुमा-फिराकर उससे यह बात कही कि वह दीना को अपने घर में न रखे, पर शांता तो दीना के व्यवहार से ऐसी बँध चुकी थी कि उसे दीना के अतिरिक्त कुछ भी सूझता ही न था।

कुछ दिन ऐसे ही बीत चले। भोली-भाली शांता दीना के बाहरी आडंबर भरे व्यवहार को सच मान बैठी। उसके मन की बातों को न समझ सकी। सज्जन व्यक्ति दूसरों की बातों पर सहज ही तुरंत विश्वास कर लेते हैं। वे अन्यों को भी अपने जैसा सज्जन ही समझते हैं।

दीना मन ही मन सोचा करती थी—'जल्दी ही मैं विवाह करूँगी। मेरे बच्चे होंगे। रहने के लिए बड़े से घर की जरूरत होगी, पर इतना अच्छा घर मुझे कहाँ मिलेगा ?'

फिर दीना सोचने लगी—'शांता को इस घर से निकाला जाए। तभी मैं चैन से रह सकती हूँ।'

उसने मन ही मन निर्णय लिया कि इसे मैं अपने रास्ते से दूर करके ही रहूँगी। दीना कई दिन तक यह सोचती रही कि शांता को घर से किस प्रकार निकाला जाए ? शांता आसानी से निकलने के लिए तैयार न होगी। फिर झगड़ा होने पर पड़ोसी भी शांता का ही पक्ष लेंगे। इसलिए दीना ने सोचा—'सीधे-सीधे इससे कुछ भी कहना बेकार है। मुझे छल से काम लेना होगा और उसने मन ही मन एक षडयंत्र रचा।'

उस दिन मौसम सुहावना था। ठंडी-ठंडी हवा बह रही थी। दीना शांता से कहने लगी—'चलो दीदी ! आज तो जंगल के पार नदी किनारे घूमने चलें।'

शांता तो कभी दीना की किसी बात के लिए मना करती ही न थी। वह उसके साथ चल दी। रास्ते भर दीना उससे चापलूसी भरी मीठी-मीठी बातें करती रही। घूमते-घूमते वे एक ऊँचे टीले पर चढ़ गईं। नीचे कल-कल करती नदी बह रही थी। 'ओह ! देखो तो दीदी नीचे का दृश्य कैसा मनोहर है ?' दीना बोली।

शांता जैसे ही नीचे झुकी तो दीना ने उसे जोर से धक्का दे दिया। शांता कुछ समझ पाती, सँभल पाती इससे पहले ही वह टीले से लुढ़कती, बल खाती नीचे नदी की धार में बीचों बीच आ गिरी। दीना बड़े ध्यान से देख रही थी। शांता को पानी में डुबकी लगाते

देख वह फुसफुसाई—'बस ! अब तेरा काम तमाम हो गया।' वह खुशी-खुशी घर की ओर चल पड़ी।

घर के पास आने पर दीना ने जोर-जोर से रोना-कलपना प्रारंभ कर दिया। घर आकर तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। उसकी आवाज सुनकर सारे पड़ौसी दौड़े चले आए। दीना उन्हें बिलख-बिलख कर बता रही थी कि जंगल में एक भेड़िया आकर शांता को उठा ले गया। यह सुनकर सारे पड़ौसी धक् से रह गए। अब किया भी क्या जा सकता था ? वे दीना को तरह-तरह से धैर्य बँधा रहे थे। दीना बार-बार कह रही थी—'हाय रे ! भेड़िया मुझे ही क्यों न उठा ले गया। शांता के बिना मेरा जीना बेकार है। मैं भी मर जाऊँगी।'

पड़ौसी उसे तरह-तरह से धैर्य बँधाते रहे। वे उसे समझा-बुझा कर अपने घर वापिस लौट गए।

उधर जब शांता नदी की धारा में डुबकी लगा रही थी तो बूढ़े भैंसा ने जो दूसरे किनारे पर कीचड़ में बैठा था, उसे देखा। वह तुरंत तेजी से तैरता हुआ आया। नदी की बीच धारा में गहरा पानी था। वहाँ बस बुलबुले उठते दिखाई दे रहे थे और कुछ भी न था। 'आज पता नहीं कौन नदी में डूबा है ?' भैंसा मन ही मन कहने लगा। सहसा उसे तभी किसी जानवर की पूँछ पानी में तैरती हुई दिखलाई दी। उसने जल्दी से उसे खींच लिया। पूँछ खींचे जाने पर पानी में डूबी हुई शांता ऊपर आ गई। 'ओह ! शांता तुम।' भैंसा उसे देखकर आश्चर्य से बोला।

वह जल्दी से बेहोश-सी शांता को किनारे पर लाया। उसके नाक, गले, फेफड़ों में पानी भर चुका था। भैंसे ने उसे उल्टा लिटाया और फेंफड़े दबाकर पानी निकाला। घंटों उपचार करने के बाद कहीं जाकर शांता ने आँखें खोलीं। अपनी मेहनत सफल होते देख भैंसा प्रसन्नता से झूम उठा। वह शांता के सिर पर अपना हाथ फिराते हुए बोला—'शांता बिटिया ! चिंता न करो, अब तुम बिलकुल ठीक हो।'

'ओह ! मैं यहाँ कैसे आ गई ?' शांता आँखें फाड़कर चारों ओर देखकर उठते हुए बोली।

'बेटी ! तुम नदी में डूब गई थीं। मैं तुम्हें निकालकर लाया हूँ।' भैंसा बोला।

यह सुनते ही शांता की आँखों के आगे कुछ समय पहले की घटना घूम गई। वह फूट-फूटकर रो उठी।

'अरे ! तुम रोती क्यों हो ? तुम नदी में कैसे गिर पड़ीं ? क्या तुम आत्महत्या करने जा रही थीं ?' भैंसे ने एक साँस में ही अनेक प्रश्न पूछ डाले।

तब शांता ने भैंसे को सारी बातें बता दीं कि किस प्रकार दीना ने उसे धक्का दिया था। शांता बहुत ही दुःखी होकर कह रही थी—'दादाजी ! मुझे चोट खाने और डूब जाने का उतना दुःख नहीं है जितना कि दीना से विश्वासघात पाने का है। जिसे हम सदा हृदय से चाहते हैं, उसका इतना बड़ा विश्वासघात हमें बहुत गहरी पीड़ा देता है।'

साँझ होने वाली थी। भैंसा बोला—'चलो अब घर चलें।'

उसने शांता को अपनी पीठ पर बैठाया और दोनों घर की ओर लौट चले। रास्ते में भैंसे ने मन ही मन सारी स्थिति पर कुछ विचार किया। उसने शांता को अपने घर उतारा और बोला—'तुम्हारी तबियत ठीक नहीं। तुम अभी यहीं आराम करो।'

फिर वह सही स्थिति जानने के लिए पड़ौसियों के पास गया। उनसे सारी बात सुनकर भैंसे की आँखें लाल हो उठीं। भैंसे ने जब उन्हें सही बात बताई तो सारे जानवर गुस्से से भड़क उठे। वे गुस्से में भरकर चिल्लाए—'इस दुष्टा को आज सबक सिखाकर ही रहेंगे।

सब तेजी से दीना के घर की ओर दौड़ चले। दीना को इस सबकी सपने में भी उम्मीद न थी। वह तो बैठी दावत उड़ा रही थी। सहसा ही जानवरों ने दरवाजा तोड़ डाला और घर में घुस आए। दीना कुछ समझ पाए इससे पहले ही उसे दबोच लिया। वह हक्की-बक्की रह गई। तभी भैंसे ने कसकर उसके गाल पर तमाचे

लगाए और सींगों से, जोर से झकझोर कर पूछा— 'बोल पापिनी ! तुझे क्या दंड दिया जाए ?'

'क्यों मारते हो मुझे ? मैंने ऐसा क्या किया है ?' दीना रिरियाती हुई बोली।

विश्वासघातिनी—दुष्टनी ! तुझे मारेंगे नहीं तो क्या तेरी पूजा करेंगे। कहते हुए एक सूअर ने उसकी सारी ऊन नोंच डाली। दूसरे जानवर भी गुस्से में भरकर खड़े थे। सभी दीना पर टूट पड़े। किसी ने उसकी पूँछ उखाड़ी, किसी ने सींग तोड़े तो किसी ने दाँत हिला डाले। उन सारे ही जानवरों ने मार-मारकर दीना को अधमरा-सा बना दिया था।

तभी वहाँ सहसा शांता ने प्रवेश किया। शोर सुनकर उससे रहा न गया था और दौड़ी चली आई थी। वह बीच-बचाव करते हुए बोली—'अब बहुत हो चुका। अब इसे छोड़ दो। भगवान् ही इसे दंड देंगे। बुरे काम करने वाला सोचता है कि इसे कोई देखता नहीं, पर इस दिखाई न देने वाले संसार से भी परे कोई अदृश्य सत्ता भी है जो समस्त संसार का नियंत्रण करती है। वही अच्छे या बुरे कर्मों का फल देता है। बुरा करने का फल कभी न कभी तो मिलता ही है।

शांता ने बहुत कहा—सुना तब कहीं जाकर जानवर दीना को मारने से रुके। भालू गुर्राया—'चलो ! शांता बहिन के कहने से तुम्हें छोड़ दिया, पर अब तुम भागो इस जंगल से। अपना काला मुँह अब कभी हमें न दिखाना।'

दीना चुपचाप सिर झुकाकर एक ओर चल दी। उस दिन के बाद से फिर उसे किसी जानवर ने न देखा।



सच्चा धन

विशाल और अभय दोनों मित्र थे। वे एक ही कक्षा में पढ़ते थे। दोनों साथ-साथ स्कूल जाते, साथ-साथ खेलते। कई वर्षों से यही क्रम चलता आ रहा था। दोनों ही बच्चे धीरे-धीरे बड़े हो रहे थे। बड़े होने के साथ-साथ विशाल में अब घमंड की भावना भी पनपने लगी थी। एक दिन वह अभय से बोला--'अभय ! तुम तो गरीब हो।'

'कैसे ? हैरान होकर अभय ने पूछा। उसने तो यही सुना था कि गरीब वे होते हैं जिनके पास खाने को भरपेट भोजन नहीं होता, पहिनने के लिए कपड़े नहीं होते।'

विशाल कहने लगा—'तुम्हारे घर में न टेलीविजन है, न फ्रिज है, न कूलर है।'

'क्या जिनके यहाँ ये सब नहीं होते वे गरीब होते हैं ?' अभय पूछने लगा।

'और क्या ! मेरी मम्मी यही कहती हैं। विशाल गर्व के साथ बोला।

अभय अपना-सा मुँह लेकर रह गया। वह उदास होकर घर पहुँचा। आज उसने पहली बार बड़े ध्यान से अपना घर देखा। वह मन ही मन सोचने लगा कि विशाल ठीक ही कहता है। उसके घर में विशाल के घर की भाँति न कीमती सोफा है, न कालीन है, न चमक-दमक वाला महँगा सामान है। टेलीविजन, कूलर और फ्रिज की तो बात ही दूर रही। यह सब सोचकर तो उसकी उदासी और भी अधिक बढ़ गई। अब अभय को लगा कि सारे ही मित्रों में वही गरीब है।

अब अभय का दूसरे बच्चों के साथ खेलने का, उनके घर जाने का भी मन न होता। उसे लगता कि विशाल की भाँति कहीं वे

भी उसे गरीब न कहने लगे। वह अपने आपको दूसरे बच्चों से हीन समझने लगा।

अभय की माँ कई दिनों से देख रही थी कि वह अन्यमनस्क-सा ही रहता है। न वह अपने दोस्तों से खुलकर बात करता है और न उनके साथ ही खेलने-कूदने जाता है। उन्होंने सोचा कि बच्चे हैं आपस में झगड़ लिए होंगे।

'क्या बात है अभय ? क्या तुम्हारी किसी बच्चे से लड़ाई हुई है ?' माँ ने पूछा।

'नहीं तो माँ।' अभय ने उत्तर दिया। 'तो फिर तुम दूसरे बच्चों के साथ खेलते क्यों नहीं ? गुमसुम से चुपचाप क्यों बैठे रहते हो ?' माँ पूछ रही थी।

अभय बोला—'माँ वे सब अमीर हैं। उनके वहाँ जाते मुझे झिझक लगती है।'

'क्यों ! किसी ने तुमसे कुछ कहा है क्या ? अभी तक तो तुम रोज एक-दूसरे के घर आते-जाते थे।'

'अभी तक तो इस ओर मेरा ध्यान ही न गया था। विशाल ही कहता था कि हम गरीब हैं, क्योंकि हमारे घर उसके यहाँ की तरह कीमती चीजें नहीं हैं।' अभय रुँआसा-सा बोला।

माँ को यह सुनकर अच्छा न लगा। 'बच्चे के मन से यह हीन भावना निकालनी ही होगी अन्यथा उसका स्वास्थ्य-विकास रुक ही जाएगा।' मन ही मन उन्होंने सोचा।

उन्होंने पूछा—'अच्छा तो एक बात बताओ ? क्या स्कूल में तुम्हारे अध्यापक भी ऐसा कहते हैं ? क्या वे भी उन्हीं बच्चों को अधिक महत्त्व देते हैं ? क्या उन्हीं को प्यार करते हैं जिनके घरों में कीमती वस्तुएँ हैं।'

अभय बोला—'नहीं माँ ! ऐसा तो कुछ नहीं है।'

'तो बेटे ! इस बात को अपने मन से बिलकुल ही निकाल दो। बड़ा वह नहीं है जिसके घर में कीमती वस्तुएँ हैं। व्यक्ति बड़ा होता है अपने अच्छे गुणों से, अच्छे व्यवहार से। बाहरी चमक-दमक की चीजें

तो बस थोड़े से समय के लिए ही प्रभावित कर सकती हैं।' माँ समझा रही थी।

अभय बड़े ध्यान से माँ की बातें सुन रहा था।

माँ फिर बोली—'अभय बेटे ! ईमानदारी और परिश्रम की कमाई ग्रहण करने वाला ही सच्चा अमीर है। रिश्वत लेने वाला, दूसरों को सताने वाला ही सबसे ज्यादा गरीब है। तुम अभी इन सब बातों में अधिक न उलझो। परीक्षाएँ पास हैं, मन लगाकर पढ़ो। व्यक्ति सद्‌गुणों से ही सच्चा और स्थायी सम्मान पाता है।'

माँ की बातें अभय की समझ में आ गई थीं। वह अपनी पढ़ाई में जी-जान से जुट गया। वार्षिक परीक्षा का परिणाम निकला तो अभय ने कक्षा में सर्वोच्च अंक पाए। प्रधानाचार्य ने उसकी बहुत प्रशंसा की और पुरस्कार दिया। शिक्षकों और साथियों ने भी उसकी प्रशंसा की। इस सबके बीच अभय को रह-रहकर माँ की बात याद आ रही थी कि सद्‌गुणों से ही व्यक्ति सच्चा और स्थायी सम्मान पाता है।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। अभय अब विशाल की बातों पर बिलकुल ध्यान न देता था। वह माँ को सम्मान देता था, उसकी सीख के अनुसार चलता था। अभय हर कक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होता। खेलकूद, वाद-विवाद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि कोई ऐसा क्षेत्र न था जिसमें अभय आगे न रहा हो। वह अपने स्कूल में प्रतिभाशाली छात्रों में से एक माना जाता था। साथी उसका सम्मान करते थे, अध्यापक उसे प्यार करते थे।

स्कूल की शिक्षा समाप्त करके अभय और विशाल दोनों ने कालेज में प्रवेश लिया। अभय ने अपने परिश्रम, प्रतिभा और अच्छे व्यवहार से वहाँ भी सम्मान पाया और हर क्षेत्र में सबसे आगे ही रहा। कालेज में जाकर विशाल अमीर और एय्याश लड़कों की संगत में पड़ गया। उसमें बहुत से दुर्गुण आ गए। वह पैसे के घमंड के कारण किसी को कुछ समझता ही न था। उसके पिताजी बड़े

व्यापारी थे, उसकी हर माँग पूरी करते रहते थे। बच्चा किधर जा रहा है ? यह देखने की उन्हें फुरसत ही न थी।

कुछ वर्ष बाद पढ़ाई समाप्त करने के बाद अभय को अच्छी नौकरी मिल गई। वह प्रोन्नति करता हुआ बड़ा आफीसर बन गया। उधर विशाल यही सोचता रहा कि मुझे अधिक पढ़-लिखकर क्या करना है, मुझे क्या कोई नौकरी करनी है। मेरे पास आखिर कमी किस चीज की है ?

दिन बदलते देर नहीं लगती। विशाल के पिताजी को व्यापार में जबरदस्त घाटा हुआ। उन्होंने विशाल से स्पष्ट कह दिया कि वह कोई काम-काज ढूँढे, इस तरह घर बैठे रहने से कोई लाभ न होगा। नौकरी की तलाश करते-करते विशाल एक दिन अभय से मिला। अभय के आफिस में एक स्थान खाली था। विशाल ने अभय से बड़ी प्रार्थना की कि वह उसे उस स्थान पर रख ले। अभय को विशाल की इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला—'भाई ! यह तो छोटा-सा पद है, वेतन भी कम मिलेगा। तुम इस छोटे पद पर काम क्यों करोगे ?'

'क्या करूँ ? जितनी मुझ में योग्यता है वैसा ही तो पद मिल पाएगा।' यह कहते-कहते विशाल की आँखें गीली हो गईं। कुछ पल चुप रहकर वह बोला—'अभय भाई ! तुम्हारी बातों की मैं सदा उपेक्षा कर दिया करता था, पर अब ये मुझे रह-रहकर याद आती हैं। तुम ठीक कहा करते थे कि धन से नहीं सद्विचारों से, गुणों से, योग्यता से व्यक्ति ऊँचा उठता है, आगे बढ़ता है—यही सच्ची संपत्ति है। धन तो आज है कल नहीं, उसके आधार पर अपने को बड़ा समझना बड़ी मूर्खता है।'

अभय ने विशाल को बहुत देर तक धैर्य बँधाया और तरह-तरह से समझाया। विशाल के जाने के बाद बहुत देर तक उसके मन में एक बात गूँजती रही—'मेरी माँ ने जो संपत्ति दी है वह कभी नष्ट नहीं हो सकती।' उसका मस्तक माँ के प्रति श्रद्धा से झुक गया जिसने उसे सच्ची दिशा दिखलाई थी।

सुनो-सुनो !

ऋतु के पिता रक्षामंत्रालय में उच्चपद पर थे। ऋतु देखती थी कि जब भी पिताजी घर पर होते तो उनके बहुत-से फोन आया करते। वे अपने सहयोगियों से प्रातः फोन पर बातें करते रहते थे। ऋतु भी चाहती थी कि पिताजी की ही भाँति वह भी अपनी सहेली से फोन पर बातें करे, पर उसकी दादी डाँट देती थी, वे कहतीं—'ओह ! नन्ही-सी लड़की हो तुम। फोन पर किससे और क्या बातें करोगी ? जब बड़ी हो जाओ तब बातें करना।'

एक-दो बार दादी की अनुपस्थिति में उसने फोन किया भी, परंतु उधर से कोई उत्तर न आया। उसे डर था कि बारंबार फोन करने पर दादी नाराज होंगी। ऋतु के पिताजी ने उसे फोन करते देख लिया था। वे बहुत समझदार थे। वे जानते थे कि बालक की जिज्ञासा को प्रोत्साहन देना चाहिए, जिससे सही विकास हो सके। उन्होंने ऋतु के लिए टेलीफोन का एक सुंदर-सा खिलौना ला दिया, साथ ही फोन करने की विधि भी समझा दी।

ऋतु का खिलौना हूबहू टेलीफोन जैसा था, बस यह छोटा था इतनी बात जरूर थी। ऋतु उसे पाकर बड़ी ही प्रसन्न हुई। पिताजी के आफिस जाते ही वह अपना फोन लेकर बैठ गई। उसने अपनी सहेलियों को घंटों फोन किया, परंतु दूसरी तरफ से कोई आवाज नहीं आई। ऋतु रुँआसी हो गई, फोन उसने एक तरफ रख दिया। पिताजी के आते ही वह उनसे लिपट गई और बोली—'ओह पिताजी ! आपने मुझे कितना गंदा फोन दिया है ?'

'क्यों क्या हुआ ?' पिताजी ने पूछा।

'पिताजी ! मैं घंटों हैलो-हैलो करती रही, अनेक बातें करती रही, परंतु मेरी बात को किसी ने सुना नहीं, न उनका कोई जवाब

ही आया। आप तो फोन पर खूब बातें करते हैं। दूसरे व्यक्ति आपकी बातें सुन लेते हैं और आप उनकी।'

'हाँ-बेटी ! वह तो सचमुच का फोन है न इसलिए। पिताजी ने उसे समझाया।

'सचमुच का कैसा ? उसमें ऐसी क्या खास बात है कि आवाज सुनाई दे जाती है ?' पूछने लगी।

'चलो ! पहले चाय पीयें, नाश्ता करें फिर घूमने चलेंगे तो तुम्हें यह सब समझाएँगे।' पिताजी ने कहा और ऋतु चाय की मेज की ओर दौड़ गई।

नाश्ता करने के बाद पिताजी बोले—'आओ ऋतु ! आज तुम्हें फोन के बारे में समझाएँ। पूछो क्या जानना चाहती हो ?'

'पिताजी ! आपके फोन से बात क्यों सुनाई दे जाती है, हमारे से क्यों नहीं देती ?' ऋतु बोली।

'बिटिया ! यह तुम्हारा फोन केवल देखने में टेलीफोन जैसा है। उसमें वह यंत्र नहीं है जिससे दूर की बातें सुनाई दे सकें। हमारा टेलीफोन बिजली जैसे तारों से जुड़ा है। तुमने सड़क पर टेलीफोन के तार और खंभे लगे हुए देखे हैं। हर फोन इनसे जुड़ा रहता है। जब कभी आँधी-तूफान या और किसी बात से ये तार टूट जाते हैं या इनमें गड़बड़ी आ जाती है तो फिर आवाज भी सुनाई नहीं देती।' पिताजी ने कहा।

'पिताजी ! बिजली जैसे तारों से आवाज सुनाई देने का क्या संबंध है ?' ऋतु ने उत्सुकता से पूछा।

पिताजी बोले—'तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। देखो ! ऐसा होता है कि जब हम कोई शब्द बोलते हैं तो वह ईथर में गूँजता है। ईथर से अभिप्राय है—पृथ्वी और आकाश के बीच स्थित एक चुंबकीय शक्ति जो ध्वनि को अपनी ओर खींचती है। हमारे द्वारा बोले गए शब्द ईथर में समा जाते हैं। इसी ईथर की सहायता से जब शब्द की लहरें कान के कोमल परदे से टकराती हैं तो फिर हमें अपनी या दूसरों की बात सुनाई देती है। यह

शब्द सुनने की एक सामान्य प्रक्रिया है। साधारण रूप से हमारी आवाज कुछ दूर तक ही सुनाई देती है, परंतु दूरभाष यंत्र में यह व्यवस्था होती है कि हमारी आवाज से जो कंपन्न उत्पन्न होता है उसे यह और भी शक्तिशाली ढंग से ग्रहण करता है। फिर शब्द, विद्युत के शब्द के आवेगों में बदल जाते हैं। ये विद्युतीय आवेग तारों पर चलते हैं। रिसीवर उठाने पर सुनने वाले को वे फिर ध्वनि के रूप में बदलकर सुनाई देते हैं। यह सब काम इतनी तेजी से होता है कि सुनने वाले को शब्द बोलने और सुनने के बीच में समय का कोई तनिक भी अंतर मालूम नहीं होता है। यह प्रक्रिया शब्द की गति से भी अधिक तेज होती है।

'टेलीफोन के द्वारा क्या हम कितनी ही दूर बैठे व्यक्ति से बात कर सकते हैं ?' ऋतु ने फिर पूछा।

'हाँ ! टेलीफोन से तुम यहाँ दिल्ली में बैठकर बंबई, कलकत्ता, मद्रास, रूस, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि कहीं भी बातें कर सकती हो। बस यह बात जरूर है कि दूरी अधिक होने के कारण आवाज थोड़ी हल्की सुनाई पड़ेगी।' पिताजी ने समझाया।

'एक दिन आप बता रहे थे कि मनुष्य की सभ्यता का विकास धीरे-धीरे हुआ है। धीरे-धीरे उसने नई-नई खोजे की हैं। टेलीफोन का आविष्कार किसने किया था और कब किया था ? वह व्यक्ति कितना प्रभावशाली होगा ?' ऋतु ने पूछा।

ऋतु के पिताजी कुछ पल तक सोचने के बाद बोले—'टेलीफोन के आविष्कार हैं—अलेक्जेंडर ग्राहमबेल। इनका जन्म स्काटलैंड में हुआ था। सोलह वर्ष की आयु से ही ये वोस्टन नगर में गूँगे-बहरों को पढाते थे। उन्हें पढ़ाते-पढ़ाते बेल ने यह सूक्ष्म चिंतन-मनन कर लिया कि शब्द की लहरें कान के परदे से टकराकर कैसे ध्वनि उत्पन्न करती हैं। सहसा ही उन्हें यह कल्पना सूझी कि कोई ऐसा यंत्र बनाया जाए जिसके द्वारा आवाज को दूर तक सुना जा सके। बेल अपनी भूख-प्यास, सुख-चैन सभी कुछ भूलकर इस दुष्कर कार्य में जुट गए। मनस्वी

व्यक्तियों के लिए कोई कार्य असंभव नहीं होता। तीन वर्ष के अथक परिश्रम के बाद आखिर बेल को थोड़ी सफलता मिली। शुरू में तो उन्होंने कान के परदे जैसी लोहे की दो गोल झिल्लियाँ बनाई थीं। वह दोनों बिजली के तार से जुड़ी रहती थीं परंतु इससे आवाज बहुत साफ सुनाई नहीं देती थी। बहुत समय तक बेल अपने इस आविष्कार को सुधारने में लगे रहे। आखिर एक दिन उनकी मेहनत सफल हुई। १८७६ में वे दूरभाष यंत्र को अंतिम रूप देने में सफल हुए। १० मार्च, १८७६ का दिन मानव सभ्यता के विकास का महत्त्वपूर्ण दिन था जब अलेक्जेंडर बेल और उसके प्रयोग में सहायक वाटसन ने एक-दूसरे की आवाज को स्पष्ट रूप से सुना। 'मैं तुम्हारी बातें सुन सकता हूँ।' ऐसा कहकर वे खुशी से चिल्लाकर एक-दूसरे की तरफ दौड़े और प्रसन्नता की अधिकता से उन्होंने एक दूसरे को उठा लिया।

ऋतु जो बड़े ध्यान से सारी बातें सुन रही थी, बीच में ही बोल पड़ी, पिताजी ! बेल कोई बहुत अनुभवी-बुड्ढे व्यक्ति रहे होंगे ?'

पिताजी हँसकर बोले—'ऋतु ! तुम्हें यह जानकर अचंभा होगा कि जब अलेक्जेंडर बेल ने यह प्रयोग किया था तब वे केवल अट्ठाईस वर्ष के थे। आयु से प्रतिभा का कोई विशेष संबंध नहीं होता। ऐसे भी वृद्ध होते हैं जो अपना सारा जीवन खाते-सोते, रोते-झींकते छोटे-मोटे साधारण कामों में बिता देते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी बालक और युवक होते हैं जो ऐसे महान् कार्य करते हैं कि लोग दंग रह जाते हैं। महानता निर्भर करती है व्यक्ति के सोचने के ढंग पर, उसके जीवन सिद्धांत पर। बड़े होकर कोई एकाएक महान् नहीं बन सकता। उसके लिए तो बचपन से ही अभ्यास करना होता है, साधना करनी पड़ती है।'

'हाँ ! तभी व्यक्ति कुछ ऐसा कर पाता है कि उसका नाम अमर हो जाता है।' ऋतु जो भाव-विभोर होकर पिताजी की बातें सुन रही थी, कहने लगी।

और हमारी ऋतु बिटिया भी ऐसी ही बनेगी न अच्छी-अच्छी।' कहकर पिताजी ने ऋतु के गाल पर हल्की-सी चपत लगा दी। ऋतु हँसते हुए दौड़ चली अपनी सहेलियों के घर आज मिले हुए नए ज्ञान को उन्हें भी बतलाने।



कौवों की चालाकी

जाड़ों के दिन थे। हल्की सुहानी धूप फैली थी। साँझ होने वाली थी, अधिकांश जीव-जंतु अब तक घर वापस आ चुके थे। बरगद के उस घने पेड़ पर अनेक पक्षी बैठे हल्की धूप का आनंद ले रहे थे। तभी वहाँ शुभा गिलहरी ने प्रवेश किया। वह कहीं से एक छोटा-सा बेल ले आई थी। बरगद के किसी कोटर में बैठकर वह उसे तोड़ने लगी। बेल कड़ा था, शुभा उसे सहज ही काट नहीं पा रही थी। खट-खट की आवाज सुनकर कोटर के ऊपर की शाखा पर बैठे दो कौवों ने नीचे झाँका। बेल देखकर उनके मुँह में पानी आ गया। दोनों ने आपस में कुछ सलाह की। एक कौवा उड़कर कोटर के पास वाली डाली पर जा बैठा और बड़ी मीठी वाणी में बोला—'दीदी ! यह क्या कर रही हो ?'

कौवे की आवाज सुनकर गिलहरी चौंक पड़ी। उसने बेल को कसकर पकड़ लिया।

सूखे स्वर में वह बोली—'देखते नहीं ! मैं इस बेल को तोड़ रही हूँ।'

कल्लू कौवा समझ गया कि गिलहरी को मेरा आना अच्छा नहीं लगा है। वह मन में सोचने लगा कि इसे मीठी बातों में फँसाना होगा। कौवा थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा। वह दूसरी ओर देखता रहा जिससे उस पर कोई संदेह न हो।

कौवा तिरछी निगाहों से देख रहा था कि गिलहरी बेल को कोशिश करने के बाद भी तोड़ नहीं पा रही है। वह मधुरता से फिर बोला—'मेरी सहायता की आवश्यकता हो तो बताना। मैं इसे बड़ी आसानी से तोड़ दूँगा।'

गिलहरी के उत्तर देने से पहले ही दूसरा कौवा भी वहाँ फुदक कर आ गया। वह पहले कौवे से बोला—'यही चीज तो हमने उस

दिन कलिया ताई की तोड़ी थी। कितनी आसानी से उसको हमने तोड़ दी थी।'

पहला कौवा बोला—'पता नहीं इन लोगों को इसमें क्या स्वाद लगता है जो आज शुभा दीदी भी यही बेल ले आई हैं। हम तो इसे चखते तक नहीं।'

गिलहरी बड़ी देर तक बेल को तोड़-तोड़कर थक चुकी थी। वह सोचने लगी--'ये तो इसे खाते नहीं। फिर इसे तुड़वाने में क्या हानि है ?' गिलहरी पलभर के लिए चुपचाप बैठ गई।

तभी एक कौवा दूसरे से बोला—'चलो भाई चलें ! किसी अन्य की कुछ सहायता ही करें। हमारा यह समय तो वैसे ही कोई परोपकार करने का है।'

गिलहरी उनकी बातें सुनकर बड़ी प्रभावित हुई। 'ओह ! मैंने इनके विषय में व्यर्थ ही ऐसा सोचा। सभी एक से नहीं होते।' उसने मन ही मन कहा।

अब गिलहरी ने उन कौवों को रुकने के लिए आवाज लगाई—वह बोली—'भाइयो ! यदि कष्ट न हो तो कृपया यह बेल तोड़ने में सहायता कीजिये।'

'अरे ! कष्ट कैसा ? हम किसी के काम आए, यह तो हमारा सौभाग्य होगा।' दोनों एक साथ बोले।

कौवों ने मिलकर अपने पंजों में बेल को पकड़ा और बरगद के पेड़ से नीचे उतरने लगे। पेड़ के पास ही एक बहुत बड़ी पत्थर की शिला पड़ी हुई थी। उन्होंने ऊपर से उस पर जोर से बैल को पटका, गिरते ही उसके दो टुकड़े हो गए। बीच का गूदा अलग निकल पड़ा। कल्लू कौवा और उसका साथी उस पर टूट पड़े। दोनों ने जल्दी-जल्दी बहुत-सा गूदा खा डाला। फिर दोनों ने रगड़कर चोंच पोंछ ली। इसके बाद थोड़ा-थोड़ा बेल के गूदा के टुकड़े अपनी-अपनी चोंच में दबाकर वे शुभा के पास उड़ चले।

'ओह दीदी ! यह लीजिए अपना बेल बहुत मेहनत लगी है इसे तोड़ने में।' कौवे बोले। शुभा उसे देखकर बोली—'पर इसमें गूदा तो है ही नहीं।'

'अरे दीदी ! यह ऐसा ही होता है। नाममात्र का गूदा होता है इसमें।' कल्लू बोला।

कल्लू की बात सुनकर पेड़ की ऊँची शिखा पर बैठे गिद्ध से न रहा गया। वह कौवों की सारी करतूतें देख रहा था। वह बोला—और नीचे जो गूदा खाया गया था वह ।'

यह सुनकर कल्लू आँख तिरेरकर कर्कश स्वर में बोला—'वह तो हमारा पारिश्रमिक था।'

दूसरा कौवा चोंच फाड़कर क्रोध में भरकर चीखा—'दादा ! आपको हमारे बीच में बोलने का अधिकार ही क्या है ?'

'एक तो इतनी मेहनत की। दूसरे ऐसी बातें सुनें।' कहकर दोनों कौवे शुभा के आगे बेल को पटककर चलते बने।

तब गिद्ध ने आँखों देखी सारी बातें शुभा को बताईं। सुनकर वह गुस्से में भड़क उठी—'ओह ! क्या मैं उनका झूँठा खाऊँगी।' कहकर उसने पंजों की ठोकर से बेल के दोनों टुकड़े गिलहरी ने नीचे फेंक दिए।

बूढ़ा गिद्ध समझाने लगा—'बेटी ! गुस्सा न करो। यह तो धूर्तों का स्वभाव ही है। पहले वे अपनी मीठी-मीठी बातों से औरों को लुभा लेते हैं। फिर अपना स्वार्थ पूरा करते हैं, स्वार्थ पूरा होने पर उनका वास्तविक रूप सामने आता है।'

'और कितना घिनौना होता है वह। उससे उनके लिए घृणा ही उत्पन्न होती है। आखिर कब तक वे दूसरों को धोखे में रख सकते हैं।' गिलहरी गुस्से में भरकर जोर से बोली।

सुदूर आकाश में देखते हुए दार्शनिकों की भाँति गिद्ध धीमे स्वर में बोला—हाँ ! वह जीवन भी क्या, जो किसी का आदर और विश्वास न पा सके।'



कुकर्म का फल

आंध्रप्रदेश के घने जंगल में अनेक जंगली जानवर रहा करते थे। वहीं पर अशोक, अश्विनी और विक्रम नाम के तीन हाथी भी रहते थे। वे तीनों ही गहरे मित्र थे। वे मिल-जुलकर रहते, साथ-साथ खाते-पीते और घूमते। वे शरीर से बड़े हृष्ट-पुष्ट थे। उनका स्वस्थ-सुडौल शरीर देखकर शेर-चीतों के मुँह में पानी भर आता, पर वे उन्हें देखते और ललचाकर होठों पर जीभ फिराकर ही रह जाते। वे उन्हें मारने में असमर्थ थे। कारण कि वे तीनों सदैव साथ-साथ रहते थे। उनमें से एक-एक हाथी भी बहुत बलवान था और फिर तीनों पर एक साथ हमला करके भला कौन अपनी जान से हाथ धोता ?

अशोक, अश्विनी और विक्रम आशा और उत्साह से भरे हुए विचार रखते। खूब प्रसन्न रहते, दूसरों से मीठा बोलते और सदा शिष्टता-शालीनता भरा व्यवहार करते, औरों की सहायता को सदैव तत्पर रहते। यही कारण था कि जंगल के सारे जानवर उन्हें चाहते थे। उनके आसपास छोटे-बड़े जानवरों की भीड़ लगी रहती। कोई उनकी ज्ञानवर्धक-रोचक बातें सुनने आता तो कोई छोटे-मोटे आपसी झगड़ों को सुलझवाने। तीनों हाथी सभी से बड़ा स्नेह और आत्मीयंता भरा व्यवहार करते। दूसरे जानवर एक ओर जहाँ उनका बड़ा आदर करते थे वही दूसरी ओर शिष्ट, हास-परिहास भी कर लेते। विशेष रूप से उनके बलिष्ठ शरीर पर अटकिया लेते। मनु खरगोश पूछता—'दादा ! आपके स्वस्थ-सुडौल शरीर का क्या रहस्य है ? कृपया हमें भी समझाइए। शरीर का स्वस्थ निरोग होना तो सबके लिए आवश्यक है।'

तीनों हाथी ठहाका लगाते और कहते—'सदैव प्रसन्न रहना, अच्छे विचार रखना, सादा खाना और खूब परिश्रम करना। बस यही

है हमारे इस स्वास्थ्य का रहस्य। इसे कोई भी अपनाकर सुखी रह सकता है।'

मनु खरगोश और उसके साथी अशोक, अश्विनी और विक्रम की पीठ पर कूदते-फाँदते और कहते—'दादाजी ! हम भी ऐसा ही करेंगे, आपके जैसे ही बनेंगे।'

वे तीनों हाथी अपनी सूड़ों से खरगोशों को गुदगुदी करते हुए कहते—'जरूर-जरूर।'

कभी-कभी छोटे-बड़े जीव तीनों हाथियों के पीछे पड़ जाते—'दादाजी ! हमें पीठ पर बैठकर आज तो जंगल की सैर करा दीजिए। सचमुच, आपकी पीठ पर बैठकर तो ऐसा लगता है जैसे आसमान पर ही चढ़ गए हों।'

अशोक, अश्विनी और विक्रम में से कोई उनका आग्रह रख लेता। उन्हें कुछ रुठाकर अंत में सैर करा ही देता।

ऐसे ही हँसी-खुशी से मौज-मस्ती भरे दिन कट रहे थे, परंतु दुष्ट व्यक्ति औरों को प्रसन्न, सुखी और संतुष्ट जीवन देख नहीं सकते। उसी जंगल में रहने वाला सोना नाम का एक सिंह भी अशोक, अश्विनी और विक्रम के मौज भरे जीवन से, जंगली जानवरों पर बढ़ते हुए प्रभाव से बहुत ही चिढ़ता था। उन्हें देखकर वह अपने होठों पर जीभ फिराता और कहता—'काश ! इनका स्वादिष्ट माँस मिल पाता।'

पर यह सहज संभव न था। हाथी दिन पर दिन बलवान होते जा रहे थे। सोना कुढ़-कुढ़कर दुबला होता जा रहा था। चेता नाम की एक लोमड़ी बड़े दिनों से सोना की परेशानी देख रही थी। यों उसे सोना के सामने जाने में डर लगता था, पर वह सोचने लगी—'आपत्ति के समय सहानुभूति दिखलाकर मैं इसके समीप आ जाऊँगी। शक्तिशाली की मित्रता में लाभ ही लाभ है। मुझे एक बार खतरा मोल लेना ही होगा।'

दूसरे दिन जब सोना बैठा हुआ कुढ़ रहा था तो चेता उसके पास गई। वह हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से बोली—'स्वामी ! मेरा

अपराध क्षमा करें। छोटे मुँह बड़ी बात कह रही हूँ, पर देखा नहीं जाता, इसलिए पूछ रही हूँ कि आप दिन पर दिन क्यों दुबले होते जा रहे हैं ? आपकी उदासी का क्या कारण है ? मेरा यह जीवन आपके कुछ काम आ पाए तो मैं धन्य हो जाऊँगी।'

सोना ने मुँह लटकाए हुए उदास भरे रुखे मन से लोमड़ी की ओर देखा। उसे लगा कि लोमड़ी को उससे सच्ची सहानुभूति है। सहानुभूति अनुभव करके अपने मन का भेद खोल दिया जाता है। सोना भी कहने लगा—'जंगल के जानवरों पर अशोक, अश्विनी और विक्रम के बढ़ते हुए प्रभाव को देखती नहीं तुम। इन दुष्टों ने मेरा जीना दुभर कर दिया है।'

'इन दुष्टों को मारना ही चाहिए।' चेता सोना को भड़काने लगी। उसके मुँह में पानी भर आया था। वह सोच रही थी कि सोना से बचा हुआ माँस उसे भी खाने को मिलेगा।

'पर उन्हें मारा कैसे जाए ? वे तीनों साथ-साथ ही रहते हैं।

'बलवान से बलवान शेर और चीता भी तीनों को एक साथ नहीं मार सकता।' सोना बोला।

लोमड़ी नीचे मुँह किए हुए कुछ पल सोचती रही। फिर वह बोली—'स्वामी ! आप चिंता मत कीजिए। मैं उन धूर्तों में फूट डालने की जी-जान से कोशिश करूँगी।'

चेता की बात सुनकर सोना मन ही मन प्रसन्न हो गया। उसे चेता की चालबाजी पर विश्वास था। आपस में एक-दूसरे को लड़ाभिड़ा देना उसके बाएँ हाथ का खेल था। सोना बोला—'मुझे तो पूरा-पूरा विश्वास है कि तुम्हारी सहायता से यह काम सफल ही हो जाएगा।'

'निश्चित ही होगा। मैं इसके लिए जल्दी से जल्दी कोशिश शुरू करूँगी।' चेता बोली।

चेता ने दूसरे ही दिन से अशोक, अश्विनी और विक्रम की सभा में जाना शुरू कर दिया। वह उन तीनों से बड़ी मीठी-मीठी बातें करती, उनकी प्रशंसा करते न थकती। कभी-कभी वह उनका

छोटा-मोटा काम भी कर दिया करती। अपनी लच्छेदार बातों से उसने तीनों का विश्वास जीत लिया। दुष्टों की वाणी शहद-सी मीठी होती है, पर हृदय में विष होता है। अपनी मीठी वाणी से वे औरों को रिझाते हैं, पर अंदर ही अंदर उनका अहित सोचते हैं। मौका मिलते ही वे बुरा करने में नहीं चूकते। चेता भी इसका अपवाद थी, वह अवसर देखती रहती थी कि कब वे तीनों हाथी अलग-अलग पाएँ और एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काए।

एक दिन अकेले में अशोक से बोली—'अश्विनी और विक्रम दादा का स्वास्थ्य तो बहुत ही काफी अच्छा है। दादा तुम ही इतने दुबले क्यों हो ?'

'चल हट री ! मैं तुझे दुबला दीखता हूँ।' अपने बलिष्ठ शरीर को निहारते हुए अशोक बोला।

'हाँ दादा ! जंगल के सभी जानवर ऐसा ही कहते हैं।' चेता लोमड़ी बोली।

अशोक कुछ सोचने-सा लगा। तभी चेता कहने लगी—'ओह ! होगा भी क्यों नहीं। अश्विनी और विक्रम दादा हमेशा अच्छी चीजें खाते हैं, छाँट-छाँट कर खाते हैं। आप तो अधिकतर बाहर रहते हैं। इन सब बातों का आपको क्या पता ? मैं सोचती हूँ कि आप न जाने क्यों उन दोनों के साथ रहते हैं। मुझसे यह अन्याय कदापि देखा नहीं जाता।'

अशोक को चुप देखकर उसका साहस बढ़ा और फिर आगे बोली—'दादाजी ! मैं नदी के पार एक जंगल देखकर आई हूँ। वहाँ गन्ने की ताजा और अच्छी फसल है। आप मेरे साथ वहाँ चलिए। पौष्टिक और स्वादिष्ट गन्ने खाकर आप जल्दी ही अश्विनी और विक्रम दादा से भी अधिक बलवान हो जाएँगे।'

अशोक ने कुछ नहीं कहा। हाँ-हूँ कहकर चेता की बात टाल दी। वह मन ही मन उसकी चापलूसी को समझ गया था और अपने आप से कह रहा था—'गन्ने खाने जाएँगे तो तीनों ही जाएँगे।

मिल-जुलकर रहने और साथ-साथ खाने का आनंद भी हर कोई समझ नहीं पाता।'

फिर एक बार अवसर देखकर चेता अकेले में अश्विनी से कहने लगी—'दादा ! तुम कितना काम करते हो। अशोक और विक्रम तो बस खाते हैं और पड़े रहते हैं। आप तो बहुत थक जाते होंगे न। मन करता है, प्रतिदिन आपके पैर दबा दिया करूँ।'

अश्विनी बोला—'चल हट री ! काम तो हम तीनों ही खूब करते हैं। किसी ने कभी कम किया तो किसी ने अधिक, इससे अंतर भी क्या पड़ता है ?'

चेता तुरंत बोली—'वाह जी वाह ! अंतर कैसे नहीं पड़ता ?' जानते हैं इतना सब होते हुए भी जंगल के सारे जानवर सदा अशोक और विक्रम की ही प्रशंसा करते हैं।'

'वह अच्छे हैं इसलिए प्रशंसा करते हैं।' अश्विनी बोला।

'नहीं जी नहीं ! बात यह है कि आप तो काम में जुटे रहते हैं और वे जानवरों से बातें करते रहते हैं। आपका काम तो कोई नहीं देखता, पर उनकी बातों से सभी प्रभावित हो जाते हैं। आप भी काम न करके सारे दिन बातें करते रहो तो आप भी लोकप्रिय हो जाओगे।' चेता बोली।

अश्विनी समझ गया कि चेता उसकी चापलूसी कर रही है और उसे झूठ-मूठ बहका रही है, पर उसने सोचा कि इसके मुँह क्या लगूँ, इसलिए वह चुप ही रहा। उसे चुप देखकर चेता समझी कि वह उसकी बातों से प्रभावित हो रहा है। अतएव बड़े मिठास भरे स्वर से बोली—'दादाजी ! मैं कल ही नदी पार के जंगल में गई थी। वहाँ अनेक हाथी रहते हैं। उन्हें एक नेता की जरूरत है। आप उनका नेतृत्व स्वीकार कर लें तो खूब प्रसिद्ध हो जाएँगे और वे भी ऐसे सुयोग्य नेता को पाकर धन्य हो जाएँगे।'

अश्विनी जरा-सा प्रसन्न होकर रह गया और कुछ भी नहीं बोला। चेता मन ही मन सोचने लगी कि मेरा तीर निशाने पर बैठा है। फिर कभी मौका देखकर इसे भरूँगी, परंतु अश्विनी अपने मन में

सोच रहा था—'मुझे नहीं बनना उन हाथियों का नेता-बेता। नेता बनने के लिए मैं अपने अति स्नेही और हितैषी मित्रों को नहीं खो सकता।'

कुछ दिनों बाद फिर एक बार एकांत देखकर चेता विक्रम से कहने लगी—'दादाजी ! आप कितने अच्छे हैं। मन करता है कि हर पल आपके पास ही रहूँ। पर ।'

'पर क्या ?' विक्रम ने पूछा।

'पर दादाजी ! जंगल के जानवर न जाने क्यों आप को अधिक नहीं चाहते। गलती उन बेचारों की भी नहीं है। वे तो आँखें मूँद कर विश्वास कर लेते हैं। अशोक और अश्विनी आपके विषय में न जाने क्या-क्या कहते हैं ?' चेता ने कहा।

'क्या-क्या कहते हैं ?' विक्रम ने सहज ही उत्सुकता से पूछा।

'अरे ! छोड़िए ! मैं भी क्या बेकार की बातें ले बैठी। आपको बताना तो नहीं चाहती थी, पर आज अनायास ही मुँह से यह सब निकल गया।' चेता बोली।

विक्रम के बहुत पूछने पर भी चेता ने उस दिन कुछ भी नहीं बतलाया। वह जानती थी कि जिज्ञासा जितनी बढ़ा दी जाए उतना ही अच्छा है।

इस प्रकार चेता ने अशोक, अश्विनी और विक्रम को अलग-अलग भड़काना प्रारंभ कर दिया था। उसे पता था कि पहली बार कही बात का तो कोई विश्वास न करेगा, पर जब वही बात बार-बार दुहराई जाएगी, तो सुनने वाला कुछ सोचने के लिए विवश भी होगा और बात झूठी हो या सच्ची, कुछ न कुछ शंका तो वह करने ही लगेगा।

चेता अपने प्रयास में निरंतर लगी रही। उसके बात करने का ढंग इतना आकर्षक था कि कोई यह सोच भी नहीं पाता था कि वह छल कर रही है। दुष्टों की यह विशेषता होती है कि वे विश्वास पात्र बनकर इतने मिठास से बातें करते हैं कि दूसरा उन पर सहज ही विश्वास कर सके। बुद्धिमान हर बात को स्वयं परखकर तब विश्वास करते हैं, परंतु अधिकांश ऐसे होते हैं जो बिना सोचे-समझे औरों की

बात पर विश्वास कर लेते हैं। ऐसे प्राणी ही दुष्टों के द्वारा सदा छले जाते हैं। वे सदैव हानि उठाते हैं और अपने इष्ट मित्रों और आत्मीयजनों का प्यार खो बैठते हैं।

चेता को सबसे पहले विक्रम का विश्वास जीतने में सफलता मिली। अकेले में अनेकों बार बैठ-बैठकर उसने विक्रम को अशोक और अश्विनी के विरुद्ध इतना अधिक भड़काया कि वह अंत में चेता की बातों में आ ही गया। अब वह अशोक और अश्विनी से खिंचा-खिंचा रहता, कम बोलता। उन्होंने कई बार इसका कारण जानना चाहा, पर चुप ही रहा।

एक दिन चेता विक्रम से बोली—'दादाजी ! मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप कभी मेरे घर चलें। आपकी चरणों की धूल से मेरा घर पवित्र हो जाएगा।'

चेता के बार-बार आग्रह करने पर विक्रम ने उसके घर जाना स्वीकार कर लिया। रास्ते में चेता विक्रम को बता रही थी कि उसके घर के पास ही गन्ने का खेत है। आज वह विक्रम को वहाँ दावत खिलाएगी। चेता विक्रम को अपनी मीठी-मीठी बातों में ही रिझाकर बड़ी दूर ले गई। 'ओह ! अभी कितनी दूर है तुम्हारा घर ?' वह चेता से पूछने लगा।

'बस दादाजी ! अब तो थोड़ा ही चलना है।' चेता विनम्रता से बोली।

तभी सहसा सोना ने पीछे से आकर विक्रम पर आक्रमण कर दिया। विक्रम इसके लिए बिलकुल भी तैयार न था। वह जोरों से चिंघाड़कर पीछे मुड़ा। लाल आँख किए मूँछ फड़फड़ाते आक्रमण करते सोना को देखकर एक पल को तो वह सहम गया, पर दूसरे ही क्षण वह भी आत्मरक्षा के लिए आक्रमण करने लगा। सोना और विक्रम में भीषण युद्ध हो रहा था। आज विक्रम को अपने मित्रों की रह-रहकर याद आ रही थी। अब तक तो वे सदैव साथ-साथ आते रहे थे। किसी शेर और चीते की इतनी हिम्मत न होती थी कि उन पर आक्रमण कर सके। विक्रम उस पल को कोस रहा था जब

उसने चेता के साथ अकेले जाने का निर्णय लिया था। वह सोच रहा था कि आज तो मरना निश्चित ही है। अशोक और अश्विनी को मेरी मौत के विषय में कुछ पता भी न लगेगा। उसने लड़ते हुए इधर-उधर नजर दौड़ाई तो चेता का कहीं पता नहीं था। उसके मन में क्षण-सी आशा जगी कि शायद चेता अशोक और अश्विनी को मेरे बारे में खबर कर देने और उन्हें यहाँ पर बुला लाने के लिए गई होगी।

उधर तीन मील दूर बैठे अशोक और अश्विनी ने विक्रम की भययुक्त चिंघाड़ सुनी। अशोक चौंककर बोला—अरे ! यह विक्रम की सी चिंघाड़ कहाँ से आ रही है ?'

अश्विनी ने भी ध्यान से सुना और बोला—'लगता है विक्रम खतरे में है।'

दोनों हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। आसपास बैठे जंगल के जानवरों से उन्होंने पूछा कि कहीं तुमने विक्रम को तो नहीं देखा है ? कोई भी कुछ न बता पाया। तब वे तेजी से उस दिशा की ओर बढ़ने लगे जिधर से आवाज आ रही थी। तभी रास्ते में मनु खरगोश तेजी से दौड़कर आता हुआ मिला। 'दादाजी ! जल्दी से मेरे पीछे चले आओ। विक्रम दादा और सोना सिंह की बहुत भयंकर लड़ाई हो रही है।'

अशोक और अश्विनी तेजी से मनु के पीछे दौड़ चले। उन्होंने दूर से ही देख लिया कि विक्रम बुरी तरह लहू-लुहान हो गया है। वे दोनों क्रोध से भर उठे। दाँत पीसकर, सूँड फटकार कर वे दोनों ओर से सोना पर टूट पड़े। सोना इस अप्रत्याशित आक्रमण से भौंचक्का रह गया। वह तो प्रसन्न हो रहा था कि कुछ ही देर में विक्रम को मार गिराएगा और मजे में बैठकर दावत उड़ाएगा, पर अब तो उसकी जान के भी लाले पड़ गए थे। अशोक और अश्विनी दोनों ओर से उस पर भयंकर आक्रमण कर रहे थे। वह कुछ देर तक तो साहस करके लड़ता रहा, पर विक्रम से लड़ने के कारण वह पहले से ही थका हुआ था। सोना की हिम्मत पस्त होती जा रही

थी। उसे लगा कि वह गिरने ही वाला है। तब उसने अपनी जान बचाना ही उचित समझा। मौका देखकर सोना सिंह आखिर वहाँ से भाग छूटा।

'दुष्ट आज भाग गया, नहीं तो इसकी खैर न थी।' दाँत पीसता हुआ अशोक बोला। अशोक और अश्विनी दौड़कर विक्रम के पास गए। उन्होंने अपनी सूँड़ से उसे सहलाया, घावों से खून पोंछा और पानी लाकर पिलाया। बड़ी देर बाद विक्रम इस स्थिति में आया कि उठकर चल सके। 'चलो ! धीरे-धीरे जैसे ही संभव हो घर चलो।' अश्विनी बोला।

अशोक और अश्विनी ने विक्रम को सहारा देकर उठाया। वे इधर-उधर से घेरकर उसे घर ले चले। 'आओ ! तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओ।' अश्विनी ने मनु खरगोश से कहा। वह दाँत निकालता हुआ फुदककर उसकी पीठ पर जा चढ़ा। पूरा काफिला धीरे-धीरे घर की ओर बढ़ने लगा।

थोड़ी दूर चलने के बाद मनु को कुछ धीमी-सी आवाज सुनाई पड़ी। 'रुको दादा।' उसने अशोक अश्विनी को चुप रहने का इशारा किया। वह पगडंडी के किनारे की झाड़ी से सटकर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद मनु ने हाथ के इशारे से अशोक और अश्विनी को भी बुलाया। वे धीमे से वहाँ जाकर खड़े हो गए। झाड़ी के अंदर का दृश्य देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए। वहाँ हाथ जोड़कर घिघियाती हुई चेता लोमड़ी बैठी थी। सोना सिंह उस पर दहाड़ रहा था और कह रहा था—'दुष्ट लोमड़ी ! तूने मुझे गलत खबर दी। अब इसका दंड भुगतने के लिए तैयार हो जा।'

चेता गिड़गिड़ाती हुई कह रही थी—'महाराज ! मुझे माफ कर दीजिएगा। मैंने तो आपको सही खबर दी थी।'

सिंह ने कसकर उसके गाल पर एक थप्पड़ मारा और बोला—'हूँ-हूँ ! सही खबर दी थी कि तूने उनमें फूट डाल दी है। बता विक्रम को बचाने के लिए अशोक और अश्विनी क्यों दौड़े चले

आए थे ? ओह ! आज तो यदि मैं भाग न आता तो मेरा भुर्ता ही बन गया होता। तेरे कारण ही मुझे यों कायरों की तरह भागना पड़ा।'

चेता ने अपनी सफाई में मुँह खोला, पर सोना ने उसकी एक न सुनी। उसने गुस्से में भरकर जोर से चेता को धक्का दिया और बोला—'जा भाग जा यहाँ से अब कभी मुझको मुँह दिखाया तो मुझसे बुरा कोई न होगा।'

झाड़ी से बाहर खड़े अशोक और अश्विनी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। 'तो यह बात है।' उन्होंने परस्पर एक-दूसरे से कहा।

'यह नीच हमें एक-एक करके सोना से मरवाना चाहती थी।' अशोक बोला।

'इस लोमड़ी ने मुझे भी तुम दोनों के विरुद्ध भड़काया था।' अश्विनी बोला।

'और मुझे भी।' अशोक ने कहा। चेता ने उनसे जो-जो बातें कहीं थीं, दोनों ने एक-दूसरे को बतला दीं। 'विक्रम को भी निश्चित ही यह दुष्टनी यहाँ बहकाकर लाई होगी।' दोनों ने आपस में कहा, पर उस समय तो उन्होंने विक्रम से उसके बारे में कुछ भी पूछना उचित न समझा।

घर जाकर दोनों ने विक्रम की बहुत सेवा की। वह जल्दी ही स्वस्थ होने लगा। तब उन्होंने विक्रम से सोना द्वारा घायल होने की सारी घटना विस्तार से पूछी। विक्रम ने चेता द्वारा भड़काए जाने की पूरी-पूरी और सही-सही बात बता दी। बात करते-करते उसकी आँखों में आँसू भर आए। वह कह रहा था—'ओह कैसा अधम हूँ मैं, जो उस दुष्टा लोमड़ी के कारण अपने आत्मीय मित्रों पर भी अविश्वास कर बैठा।'

अशोक उसके आँसू पोंछता हुआ बोला—'भाई ! दुःखी न होओ। दुष्टजनों का व्यवहार ही ऐसा मधुर होता है कि सीधे-सादे उनकी बातों पर विश्वास कर बैठते हैं। कभी अवसर आने पर जब धोखा खुलता है तो पछताते हैं।'

'इसीलिए तो हर किसी की बात पर यों ही विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। अच्छी तरह से सोच-विचारकर ही दूसरे के कहे के अनुसार चलना चाहिए। बिना परखे किसी की बात को मानना ही मूर्खता है।' अश्विनी बोला।

'अगर वह धूर्त लोमड़ी आए अब इधर तो मैं उसका भुर्ता ही बना दूँगा।' विक्रम गुस्से में भरकर बोला।

'अरे ! छोड़ो भी, अब उसे मारने से क्या लाभ। जो होना था वह हो चुका।' अशोक बोला।

'पर उसे कुछ दंड मिलना ही चाहिए, जिससे वह सज्जनों को ठगकर अपना स्वार्थ पूरा न कर सके।' अश्विनी ने कहा।

तभी मनु खरगोश वहाँ आया। घूमते हुए उसने अश्विनी की बात सुन ली थी। वह बोला—'अश्विनी दादा ठीक ही कहते हैं। यह कपटी लोमड़ी अनेकों बार जंगल के सीधे-सादे जानवरों को ठग चुकी है। इसका यहाँ आना मुझे कभी न भाया था।'

'यदि ऐसा है तो जो ठीक समझो करो, पर उसे जान से न मारना।' अशोक कहने लगा।

दूसरे दिन चेता लोमड़ी आई। आते ही उसने सोना की बुराई शुरू कर दी। अशोक, अश्विनी और विक्रम तीनों ने एक-दूसरे को इशारा किया। वे चुपचाप बैठे उसकी बातें सुनते रहे। वह कह रही थी—'सोना सिंह आप से चिढ़ा हुआ बैठा है। वह हर समय आपको मारने की बात सोचता है। मैंने भी उसे अच्छी तरह से समझा दिया है कि यदि आप पर उसने आँख भी उठाई तो बच न पाएगा। आप तीनों ही मिलकर उसे मार डालेंगे।'

'सो तो है ही।' अशोक बोला।

'चेता रानी ! तुम्हारा गाल कैसे सूजा है ?' विक्रम ने पूछा।

'अरे दादा ! क्या बताऊँ कि उस दिन जब सोना ने आप पर आक्रमण किया था तो पहले मैं कुछ समझ ही न पाई, भौंचक्की-सी रह गई, पर फिर स्थिति समझ में आने पर बेतहाशा दौड़ी चली गई थी जिससे कि झट से अशोक और अश्विनी दादा को बुला ले

आऊँ। तभी मैं जोरों से झाड़ी से टकरा गई। गाल में काँटें घुसने के कारण सूजन हो गई है।' चेता बोली।

विक्रम चेता की इस बात पर मन ही मन मुस्करा उठा।

'सीधे-सीधे क्यों नहीं कहती कि सोना से पिटकर आई है।' अशोक अश्विनी के कान में फुसफुसाया।

चेता कह रही थी—'वह दुष्ट सोना आप पर आक्रमण करे इससे तो अच्छा यही है कि आप तीनों मित्र ही मिलकर उसे पहले ही खतम कर दें।'

'हाँ ! हम जरूर खतम करेंगे, पर नीचों को, दुष्टों को और धूर्तों को।' विक्रम बोला और सूँड से उसने जोरों से चेता को पेड़ पर उछाल दिया।

चेता समझ ही न पाई कि क्या हुआ ? वह धम से जाकर ही नाक के बल जमीन पर गिरी। ऊँचाई से गिरने के कारण उसकी नाक टूट गई। विक्रम ने उसे पकड़ने के लिए सूँड बढ़ाई। अब चेता गिड़गिड़ाने लगी। कहने लगी—'मुझे छोड़ दो ! मुझ अपराधिनी को यों तो न मारो।'

विक्रम गुस्से से चिंघाड़कर बोला—'हुँह ! बड़ी सीधी-सच्ची बनती है। सच-सच बोल, तू हम तीनों में फूट डलवाकर सोना से हमें नहीं मरवाना चाहती थी ?'

अश्विनी बोला—'सच बोलोगी तो हम छोड़ देंगे। झूठ बोलने पर आज तुम्हें जान से ही मार डालेंगे। तुमने झूठ बोल-बोलकर हमें बहुत बहकाया है।'

मरता क्या न करता। चेता को अपना अपराध स्वीकार करना ही पड़ा। वह काँपते हुए हाथ जोड़कर बोली—'हाँ ! मुझे सोना ने यहाँ भेजा था।'

अश्विनी ने उसकी पूँछ खींचकर कहा—'सच-सच बोल ! सोना ने भेजा था या तू अपने आप ही आई थी।'

चेता अब अधिक झूठ न बोल सकी। वह सिर झुकाकर ही रह गई। वे सभी आषस में विचार करने लगे कि चेता को क्या दंड दिया जाए ?

मनु खरगोश कहने लगा कि—'दादाजी ! इस लोमड़ी का तो सार्वजनिक अपमान करना चाहिए जिससे कि यह समाज में मुँह दिखाने लायक न रह जाए।'

'हाँ-हाँ ! मनु ठीक ही कहता है।' तीनों एक साथ बोल पड़े।

इसी बीच चेता चुपचाप भाग जाने की कोशिश कर रही थी, पर अश्विनी ने पीछे से चुपचाप उसकी पूँछ पकड़कर खींच ली। चेता ने पूरा दम लगाकर छूटना चाहा। इसी आपा-धापी में चेता की पूँछ टूटकर अश्विनी की सूँड़ में आ गई।

'भगवान ने इसे अपने आप ही दंड दे दिया है। अपनी कटी पूँछ को देख-देखकर अपने दुष्कर्मों को याद करती रहेगी।' अश्विनी कहने लगा।

तब तक मनु दौड़कर जंगल के अनेक जीव-जंतुओं को बुला लाया था। सभी ने एक लंबा-सा जुलूस निकाला। आगे-आगे ढोल बजाता भालू था। उसके पीछे एक मोटे सूअर पर हाथ-पैर बाँधकर टूटी नाक और पूँछ कटी चेता लोमड़ी। उसके पीछे कतार बाँधकर जानवरों की पूरी सेना चल रही थी।

जहाँ-जहाँ जुलूस निकलता, ढोल की आवाज सुनकर जानवरों का शोर सुनकर सभी जानवर अपने-अपने घरों से निकल आते। मनु खरगोश बीच में घोषणा करता जा रहा था—'भाइयो और बहिनो ! यह चेता लोमड़ी जंगल के जानवरों से एक-दूसरे के बारे में झूठी बातें कहकर फूट डलवाती थी और अपना स्वार्थ पूरा करती थी। झूठ बोलना, दूसरों में फूट डलवाकर खाना और मौज मनाना बस यही इसके काम थे। ऐसा नीच प्राणी हमारे साथ रहने के योग्य नहीं। समाज के लिए यह घातक है। इसलिए आज इसे देश निकाला दिया जाता है।'

जुलूस घंटों सारे जंगल में घूमा तब कहीं जाकर चेता को छुटकारा मिला। उसने कभी सपने में भी न सोचा था कि उसे ऐसा अपमान भी सहना पड़ सकता है। वह सहमकर उस जंगल को ही छोड़कर चली गई। उस दिन के बाद किसी ने चेता लोमड़ी को नहीं देखा। चेता लोमड़ी की दुर्दशा देखकर फिर कभी किसी जानवर का यह साहस न हुआ कि वह दूसरों में फूट डलवाए या एक-दूसरे की कोई चुगली करे।



सुख का मार्ग

अभयारण्य में एक बार अकाल पड़ा। सभी जीव-जंतु परेशान हो उठे। वे प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे। असु चूहे को भी आखिर अभयारण्य छोड़ना पड़ा। वह अपनी पत्नी और पुत्र के साथ निकल पड़ा। अपना घर छोड़ते हुए उसका मन दुःखी था, आँखों में आँसू थे। वह बार-बार मुड़-मुड़कर अपनी मातृभूमि देख रहा था। न जाने अब कब आना हो ?

रास्ते में असु सोचने लगा कि कहाँ चला जाए ? उसे अपने कई मित्रों की याद आई। अंत में उसने सुभी गिलहरी के ही पास जाने का निश्चय किया। उसका घर दंडकारण्य में था। वे तीनों उसी ओर चल पड़े।

मित्र की सच्ची परीक्षा संकट में होती है। सुभी उनमें से न थी जो बातें तो बहुत करते हैं, परंतु काम पड़ने पर मुँह छिपा लेते हैं। असु और उसके परिवार को देखकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसने उन सभी का हार्दिक स्वागत किया।

असु ने पाया कि सुभी के घर में भी पहले जैसी खुशहाली नहीं है। उसने पूछा—कहो बहिन ! सब कुशल-मंगल तो हैं न ? यहाँ तो अकाल नहीं पड़ रहा ?'

'हाँ ! उसका प्रभाव यहाँ भी है। सुभी बोली।

असु सोचने लगा कि ऐसी स्थिति में यहाँ भी रहने से क्या लाभ ? मित्र पर अनावश्यक भार डालना उचित नहीं। अतएव उसने जाने का निर्णय सुभी को सुना दिया।

सुभी बोली—यह ठीक है कि यहाँ पर भी अकाल है, पर ईश्वर की कृपा से हमारी गुजर-बसर तो चल ही जाती है।'

'सो कैसे ?' असु ने पूछा।

तब सुभी ने समझाया कि जंगल में कावेरी नदी के तट पर बेल के कुछ पेड़ हैं। उन्हीं पेड़ों की बेल से भूख मिट जाती है। उसने असु से यही आग्रह किया कि जब तक अकाल दूर न हो जाए वे सब यहीं पर रहें।

दूसरे दिन असु सुभी के साथ बेल के पेड़ों के पास गया। वे पेड़ के पके हुए बड़े-बड़े बेलों से खचाखच भरे थे। उन्हें देखकर असु की भूख भड़क उठी। वह सुभी से बोला—'इन्हें तोड़ने में तो बड़ी देर लगती होगी ?'

'ये वृक्ष बड़े उदार हैं। हम दाँत से बेल काटने जाते हैं और इनसे जल्दी बेल देने की प्रार्थना करते हैं। बस जल्दी से वह टूट जाता है।' सुभी ने कहा।

असु ने देखा कि सुभी ने एक वृक्ष की परिक्रमा लगाई। फिर हाथ जोड़कर आँखें बंद करके प्रार्थना की।

तब गिलहरी पेड़ पर चढ़ी उसने थोड़ी-सी मेहनत की होगी कि टप से एक बेल नीचे गिर पड़ा। सुभी ने पेड़ से उतरकर उठाया। उसके दो टुकड़े किए। एक टुकड़ा घर ले जाने के लिए रख लिया। छोटे वाले हिस्से में से सुभी और असु दोनों ने जी भरकर बेल खाया। मीठे-पके बेल को खाकर असु तृप्त हो गया।

सुभी दूसरे टुकड़े को खींचकर घर लाने लगी। रास्ते में असु बोला—'बहिन ! मैं सोचता हूँ कि जब तक अकाल है इसी जंगल में रह जाऊँ। मैं कल ही अपने लिए बिल खोद लूँगा।'

'अरे ! नया बिल खोदने की क्या जरूरत है ? तुम मेरे ही साथ रहो।' सुभी बोली।

'नहीं-नहीं ! तुम्हारा घर तो छोटा है। फिर न जाने कब तक रहना पड़े ?' असु बोला।

सुभी के बहुतेरा मना करने पर भी वह दूसरे ही दिन अपनी पत्नी और बच्चे के साथ निकल पड़ा। उसने मन ही मन सोचा—'नदी किनारे पेड़ के पास ही बिल बनाऊँगा।'

पेड़ के पास उसने अच्छी-सी जगह चुनी। अभी खुदाई शुरू की ही थी कि एक मुर्गी आई और बोली—'देखो जी चूहे राजा ! जितना मन करे बेल खाओ, पर यहाँ पेड़ों के आसपास बिल बनाना बिल्कुल मना है। लगता है तुम बाहर से आए हो। तुम्हें यहाँ के नियमों की जानकारी नहीं है।'

चूहे को खुदाई बंद करनी पड़ी। मुर्गी के चले जाने पर उसने फिर खोदना प्रारंभ किया। पर तोता, सारस, नीलकंठ आदि कई एक-एक करके आए और सभी ने यही बात कही। आखिर असु को अपना विचार छोड़ना ही पड़ा।

उसकी पत्नी बोली—'सुनो ! कहीं ऐसा न हो कि पेड़ के बेल खत्म होने लगें तो ये हमें खाने न दें और जंगल से निकाल दें।'

'अरी पगली ! कितने तो बेल लगे हैं।' असु बोला।

'पर खाने वाले भी तो कितने हैं ? उसकी पत्नी बोली। वह जिद करने लगी कि रात को खूब सारे बेल तोडकर चुपचाप यहाँ से निकल चलें।'

रात को सुभी की ही तरकीब से असु ने बहुत-से बेल तोड़े। अब उसके और उसकी पत्नी के मन में लालच समा गया था। उन्होंने अपनी सामर्थ्य से कहीं बहुत अधिक बेल तोड़े। गठरी बाँधकर पीठ पर रखी और रातों-रात दंडकारण्य छोड़ दिया। रास्ते में उनसे चला नहीं जा रहा था। वे घिसट-घिसटकर चल रहे थे, पर बेल छोड़ने के लिए तैयार न थे। अंत में हुआ यह कि अत्यधिक बोझा ढोने के कारण उनके मुँह से खून निकलने लगा। पीठ की गठरी एक ओर छिटक गई और वे एक पल तड़फे तथा मर गए।

असु का नन्हा बेटा मनु न समझ सका कि उसके माता-पिता को एकाएक यह क्या हो गया। वह बारंबार उन्हें उठाने लगा—'उठो अम्मा, उठो बापू ! पर उसकी बात भला सुनता भी कौन ?'

मनु को इसी तरह कहते-कहते बहुत देर हो गई। वह खीज कर अंत में रोने लगा। तभी वहाँ सुभी गिलहरी आई, बेलों की चोरी की बात पूरे जंगल में फैल गई थी। उत्तेजित प्राणी कहीं असु पर

हमला न कर दें, इसलिए वह उसे खोजती हुई आई थी। असु और उसकी पत्नी को देखते ही वह सारी बात समझ गई। नन्हें मनु को उसने सीने से चिपका लिया। अब मनु फफक-फफककर रो उठा। 'बूआजी ! मेरे माँ और बापू को क्या हो गया हैं ?' वह रोते-रोते बोला।

'चलो बेटा ! तुम मेरे साथ चलो। तुम्हारे माँ और बाप अब गड्ढे में सोएँगे।' कहकर सुभी ने अपने पंजों से मिट्टी में गहरा गड्ढा खोदा। फिर उसने उन दोनों को सुलाकर ऊपर से मिट्टी डाल दी।

जिन बेलों के कारण दोनों के प्राण गए थे वह एक ओर पड़े लुढ़क रहे थे। उनकी ओर कोई देखने वाला तक न था।

सुभी ने रोते हुए मनु का हाथ पकड़कर खींचा और उसे अपने घर की ओर ले चली। मनु तो नन्हा था, क्या समझता लाचार चल ही पड़ा। सुभी रास्ते भर अपने आप से बुदबुदाती चली जा रही थी। तृष्णाओं का क्या कभी अंत होता है ? एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा सिर उठाने लगती है। इच्छाओं के जाल में उलझा, उनका ही दास बना और अंत में प्राणी इसी प्रकार मृत्यु के मुख में जाता है। अच्छा तो यही है कि जो कुछ भौतिक सुविधाएँ मिली हैं उनमें ही संतोष किया जाए। 'और अधिक' पाने की अंधी दौड़ में शामिल न हुआ जाए। अपनी स्थितियों पर हम विवेकपूर्वक विचार करना और उनमें संतुष्ट होना सीखें तभी जीवन में सच्चा सुख और शांति पा सकते हैं।



वनराज की महानता

वनराज भूपति आनंदवन में ही नहीं, दूर-दूर के वनों में भी अत्यधिक लोकप्रिय थे। गुण ही होते हैं जिनके कारण दूसरे हमें स्नेह करते और सम्मान देते हैं। वनराज तो सद्गुणों का खजाना ही था। लगता था मानो सभी सद्गुणों ने उनमें ही आश्रय ले लिया हो, सूक्ष्म दृष्टि, सतत् परिश्रम, गहन ज्ञान, आदर्शवादिता, परोपकार, विनयशीलता, सरल निश्छल स्वभाव आदि अनेकों दुर्लभ गुण उन अकेले में थे। उनके इस अनुपम व्यक्तित्व के कारण ही आनंदवन के प्राणी उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। वे उनके हृदय की धड़कन थे, आँखों के तारे थे। अपने प्रिय राजा की आज्ञा पर वे प्राण भी होम देने के लिए सदा तैयार रहते थे। धन्य हैं वे, जिनके चरणों में असंख्य श्रद्धा सुमन चढ़ते हैं।

यह संसार सज्जन और दुर्जन दोनों प्रकार के प्राणियों से भरा पड़ा है। दुष्ट व्यक्ति न तो दूसरों के हित के लिए कार्य ही कर सकते हैं और न ही समाज का उत्थान करने वालों की प्रशंसा ही सह सकते हैं। सत्वृत्तियों में विघ्न पहुँचाना उनका स्वभाव होता है। वनराज के कार्यों में भी अनेक दुष्ट प्राणी बाधा डाला करते थे।

आनंदवन से ही कुछ दूरी पर कण्टककानन था। वहाँ दुर्मुख नाम का एक वानर रहा करता था। वह बड़ा ही स्वार्थी और धूर्त था। वह चाहता था कि सभी उसकी पूजा करें, पर उसे निराश ही होना पड़ा, क्योंकि संसार गुणों की पूजा करता है। दुर्मुख भी अधिक समय तक जानवरों को बुद्धू न बना सका। जब कोई सम्मान देने के लिए तैयार न हुआ तो उसने दूसरा रास्ता अपनाया—जोर-जबरदस्ती का। उसने लालच देकर कुछ साथी बना लिए। वे जबरदस्ती उसकी पूजा कराने की कोशिश करते रहते थे, पर इसके लिए भी कोई तैयार नहीं होता था। गुणहीन को भला कोई क्यों सम्मान देगा ?

परंतु दुर्मुख के शिष्यों ने इसका उल्टा ही अर्थ लगाया। उन्होंने सोचा कि पशु-पक्षी सभी वनराज से प्रभावित हैं। अतएव जब तक वहाँ वनराज का प्रभाव रहेगा तब तक दुर्मुख का सम्मान नहीं होगा।

दुष्ट व्यक्ति अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए बुरे साधनों का प्रयोग करने से भी नहीं झिझकते। अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए उस समय जो उन्हें अच्छा लगता है वही करते हैं। इससे दूसरों का तो अहित होता ही है, बुरा करने वाला स्वयं भी नष्ट हो जाता है। परिणाम पर बिना विचार किए हुए उस समय तो वह आवेश में कार्य करता है, अंत में पछताता है। दुर्मुख के साथ भी यही हुआ। उसने वनराज को अपने रास्ते का काँटा समझकर उसे हटाने का उपाया सोचा। दुर्मुख का एक शिष्य था कालू। जैसा उसका नाम था 'कालू' वैसा ही वह दिल का भी काला और दुर्गुणी था। मार-पीट, लूटपाट, हिंसा आदि उसके बाएँ हाथ का खेल था। कालू ने प्रतिज्ञा की कि इस कार्य को वह पूरा करेगा।

कालू सोचता विचारता आनंदवन की ओर बढ़ा। संयोग की बात कि बबूल की झाड़ियों के पास एक तेज धारवाला चाकू पड़ा मिल गया था। कोई मनुष्य उसे भूल से वहाँ छोड़ गया था। कालू ने इधर-उधर देखा और उसे उठाकर चुपचाप अपने झोले में डालकर छिपा लिया।

अब कालू जल्दी से वनराज की गुफा की ओर बढ़ा। वनराज प्रजा के हित-चिंतन में तल्लीन थे। कालू दबे पाँव उनके पीछे जाकर खड़ा हो गया। उसने आव देखा न ताव और वनराज पर पूरी शक्ति से चाकू से प्रहार कर दिया। वनराज पलटे, देखा तो सामने खूँखार बना कालू खड़ा है। वे चाहते तो उसे एक ही झटके में समाप्त कर सकते थे, पर वे तो उदारता के सागर थे। किसी के अहित की बात वे सोच भी न सकते थे फिर किसी को मारने की तो बात ही क्या ? उन्होंने शैतान बने कालू से कहा—'पागल यह क्या करता है ?'

पर कालू तो उस समय पूरा पिशाच बन चुका था। वह जितनी जोर से चाकू चला सकता था, चलाता रहा। वनराज अपने पंजों पर उसके घातक प्रहारों को झेलते रहे, समझाने को प्रयास करते रहे। जब सिर पर शैतान सवार होता है तो उस समय अच्छाई उसके सामने प्रभावहीन हो जाती है। कालू तो मानो वनराज की बात सुन ही नहीं रहा था। उसके पेट पर, गर्दन पर, सीने पर और पंजों पर पूरी निर्दयता और नृशंसता से चाकू चला रहा था। अंततः वनराज ने उस दुष्ट के साथ शक्ति का प्रयोग करना ही उचित समझा' उन्होंने उसे जोर से गुफा के द्वार की ओर धकेला और चिल्लाए—'भाग जा ! तुरंत भाग जा तू यहाँ से। यदि मेरे अंग-रक्षकों के हाथ पड़ गया तो तेरी एक बोटी भी न बचेगी।'

बुराई अच्छाई पर पूरी शक्ति से प्रहार करती है, पर फिर उसके सामने अंत में हार भी जाती है। कालू ने अब वनराज की पहली बात सुनी। वह चाकू वहीं छोड़कर तेजी से भागा। गुफा के द्वार पर बैठे वनराज के अंगरक्षकों को कालू के यों भागने से आश्चर्य तो हुआ, पर इस भयंकर हमले वाली बात की तो वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

तभी सहसा वनराज की पत्नी रानी ने गुफा में प्रवेश किया। अंदर का वीभत्स दृश्य देखकर वह स्तब्ध रह गईं। उनके हृदय की धड़कन बढ़ने लगी। गुफा में खून की नदी बह रही थी। खून से नहाये उनके पति वनराज वहाँ लेटे थे। बस इतना ही उनके मुहँ से निकला—'ओह स्वामी ! यह क्या ?'

'घबराओ नहीं, अभी ठीक हुआ जाता हूँ।' वनराज उनके सिर पर सांत्वना भरा हाथ फिराते हुए बोले। इतने घातक प्रहारों के बाद भी उस मनस्वी वनराज के मुख पर पीड़ा का, उद्वेग का चिन्ह तक न था।

रानी ने बिना समय खोए बाहर बैठे अंगरक्षकों को पुकारा। अंदर का दृश्य देखकर वे काँप उठे। केलो हिरणी भागती चली गई और भालू डॉक्टर को दुर्घटना की सारी बात बताई। भालू अपने कई

साथियों के साथ वहाँ दौड़ा चला आया। सभी ने मिलकर कई घंटों तक वनराज का उपचार किया, तब कहीं जाकर खून बहना बंद हुआ।

उधर वनराज की प्रजा में भी इस प्राणघातक हमले की बात फैल गई। जो जैसा बैठा था भागा चला आया। असंख्य जानवर गुफा के द्वार पर अपने प्राणप्रिय राजा का समाचार जानने के लिए आतुर खड़े थे। वे सभी भगवान से प्रार्थना कर रहे थे—'हे प्रभु ! तुम हम सब के प्राण ले लो और हमारे प्रिय महाराज वनराजजी को दीर्घायु दो।'

वनराज के सेनापति गजराज ने जब से पूरी घटना जानी थी उन्हें चैन न था। उसके और पूरी सेना के रहते हुए कोई वनराज पर इस प्रकार आक्रमण कर जाए, यह उनके लिए बड़ी लज्जा की बात थी। उन्होंने हमलावर को खोजने के लिए तुरंत अपने जासूस सिपाहियों को भेजा। सिपाहियों ने सुराग लगाकर दूर के एक जंगल से दो दिन बाद आखिर कालू को पकड़ ही लिया।

अपराधी कालू को वनराज के सामने प्रस्तुत किया गया। आज वह उनसे आँखें न मिला पा रहा था। वनराज ने अपनी बड़ी-बड़ी स्नेहभरी आँखों से देखते हुए पुकारा—'कालू ! इधर आओ।'

'अब तो मैं मरूँगा ही।' यह सोचते हुए कालू धीरे से वनराज की ओर आगे बढ़ा।

पर यह क्या ? वनराज ने तो पट्टी बँधे अपने घायल पंजों से उसके हाथों को पकड़ा, हृदय से लगाया और चूम लिया। उसे एकटक देखते हुए वे बोले—'कालू ! धन्य हो तुम, धन्य है तुम्हारी स्वामिभक्ति। तुमने अपने प्राणों तक की परवाह न की। अपने राजा की बिना आज्ञा से तुम इस जोखिम भरे काम में साहसपूर्वक बिना कुछ सोचे-समझे जुट गए।'

वनराज की बात सुनकर कालू आश्चर्य से खड़ा का खड़ा रह गया। प्राणघाती से भी इस प्रकार स्नेहयुक्त व्यवहार करना ? उसकी आँखों के आगे रह-रहकर वनराज पर अपने चाकू चलाने के दृश्य

याद आ रहे थे। वनराज ने पुनः उसे स्नेह से निहारते हुए पुकारा। अब कालू अपने आप पर नियंत्रण न रख सका। वह फफक-फफककर रो उठा। वह वनराज के चरणों में लिपट गया और बोला—'आप देवता हो। मुझे यों क्षमादान न दो, लज्जित न करो। मुझे कठोर से कठोर दंड दो, नहीं तो मेरी अंतरात्मा मुझे हर पल धिक्कारेगी।'

'कालू ! वही तो तुम्हारा वास्तविक दंड होगा।' वनराज ने गंभीर वाणी में कहा।

फिर वनराज ने गजराज को बुलाया। उसे कालू की सुरक्षा और सम्मानपूर्वक आनंदवन की सीमा के पार छोड़ने की आज्ञा दी।

गुफा के बाहर वनराज की प्रजा क्रोध से खूँखार बनी खड़ी थी, वह अपने प्राणप्रिय महाराज पर घातक हमला करने वालों की बोटी-बोटी नोंच लेने के लिए आतुर थी। गजराज ने बाहर निकलकर सभी जानवरों को सबसे पहले राजा की आज्ञा सुनाते हुए कहा—'खबरदार-होशियार ! कोई भी महाराज की आज्ञा के विरुद्ध न जाए। कालू को किसी ने छुआ भी तो बहुत बुरा होगा। उसके शरीर पर एक खरोंच भी आई तो वे बहुत नाराज होंगे।'

लाचार सभी उस हत्यारे को जाते हुए देखते रहे। वे उत्तेजना से कसमसा रहे थे, परंतु राजा की आज्ञा के विपरीत कुछ करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। उनके सिर वनराज की महानता के प्रति असीम श्रद्धा से झुक गए। सामान्य प्राणी तो अपना जरा-सा अहित करने वालों के भी शत्रु बन जाते हैं, परंतु उन्होंने प्राणघाती को क्षमादान दिया था। निस्संदेह महान् आत्माएँ ही इतनी उदार होती हैं।

पाप करने वाला उसके परिणाम को उस समय भूल जाता है। वह सोचता है कि कौन है जो मुझे दंड देगा ? पर इस दिखाई देने वाले संसार से परे कोई ऐसी शक्ति है जो प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार फल देती है। भगवान के यहाँ देर हो सकती है, पर अंधेर नहीं। कालू और दुर्मुख भी इस ईश्वरीय विधान से बचकर आखिर कहाँ जाते ? दूसरे दिन दुर्मुख अपने साथियों के साथ पेड़ पर बैठा

हुआ किसी षड्यंत्र की योजना बना रहा था। कालू भी अन्यमनस्क-सा पीछे की डाल पर बैठा था कि सहसा ही तूफान आया, जोर से बिजली कड़की· और पेड़ पर गिर गई। सभी पलभर में जलकर भस्म हो गए, उनका नाम-निशान भी न रहा। असुरता देवत्व के विरोध में कोई कसर नहीं रखती, पर विजय देवत्व की ही होती है। असुरता तो अपने पाप से एक न एक दिन स्वयं जलकर नष्ट हो जाती है। इस घटना के बाद वनराज भूपति की कीर्ति और दूर-दूर तक फैल गई। उसकी महानता के आकर्षण से खिंचे अनेक प्राणी आनंदवन में आने लगे।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा